हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका २६ वाँ ग्रन्थ ।

ताराबाई

(ऐतिहासिक नाट्य काव्य)
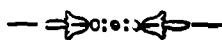
मूल लेखक—

सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल राय ।

अनुवादकर्त्ता—

पं० रूपनारायण पाण्डेय ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, कार्यालय, बम्बई ।

चैत्र, १९८५

अप्रैल, १९२९ ।

द्वितीयावृत्ति ।] [मूल्य एक रुपया ।

सजिल्दका डेढ रुपया ।

वक्तव्य ।

(प्रथमावृत्तिसे)

स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलाल रायने जो अनेक मनोहर नाटक लिखे हैं, उनमेंसे यह ' ताराबाई ' भी एक है। इस नाटकका उपादान टाड साहबके ' राजस्थान'से लिया गया है । पृथ्वीराज और ताराकी कहानी अब भी राजपूतानेके चारण-कवियों द्वारा गाई जाती है और सर्वसाधारणका मनोरंजन करती है। कविने नाटकका मूल वृत्तान्त ' राजस्थान'से लिया है, और अप्रधान घटनाओंकी स्वय कल्पना की है । यह कोई बुरी बात नहीं है । क्योंकि नाटक इतिहास नहीं है। द्विजेन्द्रबाबूने इसे गीतिनाट्यके रूपमें अन्त्यानुप्रासहीन पद्यमें लिखा है। बगालमें इस समय गीति-नाट्योंका बहुल प्रचार है। बहुधा उन गीति-नाट्योंमें अन्त्यानुप्रासहीन पद्य ही लिखे जाते हैं। नाटकोंके सिवा बंगलाकी अधिकांश कवितायें भी अन्त्यानुप्रासहीन पद्यमें ही लिखी जाती है। ऐसी कविताका आदर भी बंगालियोंमें अधिक है। नवीनचन्द्र सेन, माइकेल-मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि सुकवि अन्त्यानुप्रासहीन कविताके पथप्रदर्शक या आचार्य समझे जाते हैं।

हमारी हिन्दीमें अभीतक यही फैसला नहीं हुआ है कि कविताके लिए खड़ी बोली उपयुक्त है या व्रजभाषा। कोई व्रजभाषाका पक्ष लेकर खड़ी बोलीको थोथी भाषा, रूखी जबान कहकह कर कोसता है और कोई खड़ी बोलीका हिमायती बनकर व्रजभाषाको गॅवारू भाषा कहनेमें जरा नहीं हिचकता। अभी यह प्रश्न अच्छी तरह उठाया ही नहीं गया है कि अन्य सहयोगिनी भाषाओंकी तरह हिन्दीमें भी अत्यानुप्रासहीन कविताका प्रचार होना चाहिए या नहीं। इतना होनेपर भी यह बात नहीं कही जा सकती कि हिन्दीके कवियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट नही हुआ है।

समाचारपत्रों और मासिकपत्रोंमें कभी कभी एकआध अन्त्यानुप्रासहीन कविता प्रकाशित हो जाया करती है। काशीसे निकालनेवाले ' इन्दु'में श्रीयुत बाबू जयशकरप्रसादजीकी ब्लैकवर्स (अन्त्यानुप्रासहीन) कवितायें प्रायः हर महीने निकला करती हैं। आपने ' प्रेम-पथिक ' नामका एक खड-काव्य भी ऐसी ही कवितामें लिखकर प्रकाशित किया है। अन्त्यानुप्रासहीन कविताके पक्षपाती दूसरे कवि आजमगढ़के पंडित अयोध्याप्रसादजी उपाध्याय हैं। आप भी इसी शैलीकी

कवितायें लिखकर सरस्वती आदि मासिकपत्रोंमें प्रकाशित कराया करते हैं। उपाध्यायजीने 'प्रिय-प्रवास' नामक एक मनोहर महाकाव्य अन्त्यानुप्रासहीन पद्योंमें लिखकर प्रकाशित कराया है। तीसरे कवि पंडित लोचनप्रसादजी पाण्डेय हैं। आपकी भी ऐसी कई कवितायें पत्रोंमें निकल चुकी हैं। आपने 'संसार' नामका एक छोटासा काव्य भी ऐसी ही कवितामें लिखकर प्रकाशित कराया है। जहाँतक मुझे मालूम है, इन तीन कवियोंके सिवा और किसीने हिन्दीमें ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी है।

हिन्दीमें अन्त्यानुप्रासहीन कविता अभीतक बहुत थोड़ी हुई है। गीति-नाट्य तो एक भी नहीं लिखा गया। हाँ अन्त्यानुप्रासयुक्त कवितामें प० प्रतापनारायण मिश्रने शकुन्तलाका अनुवाद अवश्य लिखा था। पर वह अन्त्यानुप्रासहीन कवितामें नहीं है। इससे पहले अन्त्यानुप्रासहीन कवितामें सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'राजा-रानी' नाटकका अनुवाद मैं कर चुका हूँ। वह इंडियन प्रेससे शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है।* यह ताराबाईका अनुवाद मेरा दूसरा प्रयास है।

अन्त्यानुप्रासहीन कविता मेरी समझमें सबसे पहले संस्कृतमें लिखी गई है। संस्कृत-कविताके जमानेमें अन्त्य अनुप्रासका बन्धन बिलकुल ही नहीं था। यह बन्धन हिन्दीकी कवितामें ही पाया जाता है। किन्तु इस समय जिस अन्त्यानुप्रासहीन कविताका प्रचार हो रहा है, उसका आदर्श सस्कृतकी अन्यानुप्रासहीन कविता नहीं है, उसका आदर्श अँगरेजीकी 'ब्लैंकवर्स' कविता है।

ब्लैंकवर्सके सबसे पहले कवि महाकवि होमर थे। इन्होंने लैटिन भाषामें कविता की है। इनकी कविताके अँगरेजी अनुवादका विलायतमें बड़ा आदर और प्रचार है। इनके बाद रानी एलिजाबेथके समयके पहले स्केलटन और सरे नामके दो कवि हो गये हैं, जिन्होंने ब्लैंकवर्समें कविता की है। रानी एलिजाबेथके समयमें महाकवि शेक्सपियर हुए हैं। इन पृथ्वीप्रसिद्ध कविके सारे नाटक ब्लैंकवर्सहीमें हैं। इनके नाटकोंका ससारभरमें जैसा आदर और जितना प्रचार है, सो हिन्दीके पाठकोंमेंसे अधिकांश लोग जानते ही होंगे। इनके बाद सुकवि मिल्टन हुए हैं। इन्होंने ब्लैकवर्समें 'पाराडाइज लॉस्ट' और 'पाराडाइज रिगेण्ड' नामकी दो उत्कृष्ट पुस्तकें लिखी हैं। फिर सुकवि टेनिसनने भी ब्लैंकवर्समें कविता की है। इस समय तो अँगरेजीमें ब्लैंकवर्स लिखनेवालोंकी संख्या बहुत अधिक है।

---

* 'राजा-रानी' प्रकाशित हो चुका है।

ब्लैंकवर्सके दो भेद हैं, एक नियमित और दूसरा अनियमित। नियमित पंक्तियोंमें पाँच फुट और ग्यारह सिलेबुल होते हैं। अनियमितमें इतने भी होते हैं और इनसे कम ज्यादह भी होते हैं। कभी कभी फुटके पहले सिलेबुलपर जोर (accent) होता है और कभी दूसरेपर। जिस लाइनमें फुटके पहले सिलेबुल पर जोर (accent) नहीं होता है, दूसरे पर होता है, उसको यांबिक (Iambic) कहते हैं। इसके विपरीत लाइनको ट्रोकेक (Trochaic) कहते हैं। कभी कभी फुट और सिलेबुल भी किसी किसी लाइनमें कम आते हैं।

बंगालमें जो ब्लैंकवर्स लिखा जाता है, उससे इन नियमोंका कुछ विशेष संबंध नहीं है। उसमें अन्त्य अनुप्रास न रखनेका ही विशेष नियम है। छन्द प्रायः वही रहते हैं जिनमें अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता लिखी जाती है। मैंने भी ताराबाईमें जो अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता लिखी हैं सो इसी आदर्शपर। इसमें मैंने इक्कीस मात्रावाले अरिल्ल छन्दका प्रयोग किया है। अन्तिम अक्षरके दीर्घ होनेका एक विशेष नियम है। पर मैंने इस नियमको नहीं माना है। गुरुकी जगह दो लघु अक्षरोंका भी प्रयोग किया है। इसके सिवा इसमें ग्यारह मात्रापर पहला विराम और दस मात्रापर दूसरा विराम होनेका नियम है। इस नियमका भी पालन नहीं हो सका है। पर दोनों नियमोंका उल्लघन करनेसे मेरी समझमें कुछ हानि नहीं है। सुगमता और वाक्योंका ठीक संबंध बनाये रखनेके लिए ऐसा करनेकी आवश्यकता आ पडी, इसीसे ऐसा किया गया।

ब्लैंकवर्स कवितामें काफियेका बन्धन न रहनेसे कविता करनेमें बड़ा सुभीता होता है। कभी कभी ऐसा होता है कि कविके हृदयमें जो भाव है उसे काफियेकी बाधा अच्छी तरह प्रकट नहीं करने देती। काफिया मिलानेके लिए कविको या तो उन भावोंको तोड़मरोड़कर लिखना पड़ता है या व्यर्थको कुछ शब्द बढ़ाने पड़ते हैं। ब्लैकवर्स लिखनेमें इस बाधाका सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए महाकाव्य या गाथा-काव्य लिखनेमें ब्लैंकवर्सका प्रयोग अतीव उपयुक्त होता है। ब्लैंकवर्सका विशेष गुण जोरदारी है। उसीसे काफ़िया न मिलानेकी कमी कुछ छिप जाती है।

हिन्दीमें अभी ब्लैंकवर्सका प्रचार बहुत कम है। हिन्दीके पाठकोंकी रुचिका हाल भी अभी प्रकट नहीं हुआ कि वे ब्लैंकवर्सकी शैलीको पसंद करते हैं या नहीं। ऐसी दशामें नहीं कहा जा सकता कि वे इस पुस्तककी रचनाको पसंद

करेंगे या नहीं। इसके सिवा यह मेरा नवीन प्रयास है, इस कारण इसमें अनेक त्रुटियोंका होना सर्वथा संभव है। आशा है विद्वानपाठकगण नाटकके कथाभागके गुणोंपर दृष्टि देंगे; अनुवादके दोषोंको क्षमाकी दृष्टिसे देखेंगे।

अन्तमें हिन्दीके सुकवियोंसे मेरा यह अनुरोध है कि वे हिन्दीमें भी अन्त्यानुप्रासहीन कविताका प्रचार बढ़ावें। ऐसी कविताके प्रचारसे अवश्य ही हिन्दी साहित्यके एक अभावकी पूर्ति होगी। यह खयाल करके कि ऐसी कविताको कोन पढ़ेगा, ऐसी कविता करनेसे मुँह न मोड़ें। भिन्नरुचिर्हि लोकः। जिसका जी चाहेगा वह अन्त्याप्रासयुक्त कविता पढ़ेगा, और जिसका जी चाहेगा वह अन्त्यानुप्रासहीन कविता पढ़ेगा।

—रूपनारायण पाण्डेय।

निवेदन।

लगभग ११ वर्षके बाद तारावाईकी यह दूसरी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। इस बीचमें हिन्दीके काव्य-साहित्यने बहुत प्रगति की है। अन्यानुप्रासहीन रचनाओंका प्रचार यथेष्ट हो गया है और उन्होने आशातीत आदर प्राप्त किया है। हिन्दीके प्रायः सभी सम्माननीय और समर्थ कवि इसके पृष्ठ-पोषक हैं और उनमेंसे अनेक तो अपने अन्त्यानुप्रासहीन काव्योंसे हिन्दीके काव्यभाण्डारको समृद्ध बनानेमें लगे हुए हैं। बहुत समयसे यह पुस्तक दुर्लभ हो रही थी। आशा है कि इसको पुनः प्रकाशित देखकर काव्यप्रेमी सज्जन प्रसन्न होंगे।

—प्रकाशक।

नाटकपात्र ।

(पुरुष)

रायमल	... ...	मेवारके राणा ।
सूर्यमल	... ...	रायमलके भाई और सेनापति ।
संग पृथ्वीराज जयमल	... ...	रायमलके पुत्र ।
पाभूराव	....	सिरोहीके राजा ।
सूरतान	... ...	भागे हुए टोडाके राजा ।
सारंगदेव	.. ...	रायमलके एक सेनापति ।

वणिक, मालव, चन्द्रराव, फकीर आदि ।

(स्त्री)

सूरतानकी रानी

तारा	....	सूरतानकी कन्या ।
तमसा	... ...	सूर्यमलकी स्त्री ।
यमुना	... ...	रायमलकी कन्या और पाभूरावकी स्त्री ।

चारणी, परिचारिका, कृषकपत्नी आदि ।

द्विजेन्द्र-नाटकावली।

भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ नाटकलेखक स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके नीचे लिखे हुए नाटक प्रकाशित हो चुके है। प्रत्येक नाटक ऊँचे और पवित्र भावोंसे युक्त है और हृदयपर बहुत अच्छा प्रभाव डालता है—

दुर्गादास	(इतिहासिक)	मू० १)
मेवाड़-पतन	,,	॥।≈)
शाहजहाँ	,,	१)
नूरजहाँ	,,	१≈)
राणा प्रतापसिंह	,,	१॥)
चन्द्रगुप्त	,,	१)
सिंहलविजय	,,	१≈)
सुहराब रुस्तम	,,	॥≈)
भीष्म	(पौराणिक)	१।)
सीता	,,	॥-)
पाषाणी (अहल्या)	,,	॥।)
उस पार	(सामाजिक)	१≈)
भारत-रमणी	,,	॥।≈)
सूमके घरधूम	,,	।)

ताराबाई।

पहला अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—सूर्यमलका घर। **समय**—प्रातःकाल।

[रानाके भाई सूर्यमल्ल और उनकी स्त्री तमसा।]

सूर्य०—टोडा अधिपति शूरतान, रणभूमिसे
भाग गए हैं!—हाय! दिखाया, दैव, क्या!
क्षत्रिय भट चौहान, हुए यों का पुरुष?

तम०—तो अब है वे कहाँ?

सूर्य०— यहाँ से दूर पर—
अरावलीगिरि-उपत्यका-वन मे, प्रिये,
रहते हैं।

तम०— क्या उधर गये थे तुम कभी?—
और अतिथि हो प्राप्त किया सत्कार था?

सूर्य०—हाँ मैं उनके यहाँ कुटीमे था गया;
बारह दिन तक वही रहा था।

तम०— और क्या
उनको रानी भी विदेशमे साथ है?
उसका वह पहला घमड कुछ है घटा?

सूर्य०—रानी भी हैं साथ, और अतिसुदरी
वीर-बालिका है अनेक गुण-आगरी
तारा; उसको देख मुझे विस्मय हुआ।
रामायणके श्लोक मधुर स्वरसे पढे,
भारी भारतकथा उसे कण्ठस्थ है।
पढती उत्तरचरित, विलक्षण बुद्धि है।

तम०—रानीको मै खूब जानती हूँ, बडा
गर्व अलौकिक था, परन्तु अब आज तो
दैवयोगसे दर्प हुआ सब चूर्ण है।

सूर्य०—पतितोंका दुर्भाग्य देखकर यो प्रिये,
तुमको होना नही चाहिए उल्लसित।
सभव सबके लिए यहाँ है एक दिन।

तम०—क्या सभव है? पतन? जो कि उन्नत नही,
उसका कैसा पतन? सोच तो लीजिए।
मैं कुछ रानी नही।

सूर्य०— नही, रानी नही;
सेनापतिकी स्त्री। पर इससे भी अधिक
नारीका दुर्भाग्य देख पड़ता प्रिये।
—हाँ, कहता था—सुनो, 'सग', 'पृथ्वी' तथा

'जयमल', तीनों कुअँर राज्य चित्तौरके ।
राना जो हो, प्राप्त राज्य-लक्ष्मी करे,
तारा है उपयुक्त उसीके कामिनी ।

तम०—क्यों, क्या राना निर्विवाद कोई नहीं
हो सकता है ?

सूर्य०— ठीक जान पड़ता नहीं ।
जटिल समस्या, भाग्यचक्रका फेर है ।
छोटा जयमल, नीच प्रकृतिका, प्रिय वही
रानाको । पृथ्वी उदार निर्भीक है,
किन्तु असयत है स्वभाव, चलता सदा
औरोंकी ही मान मन्त्रणा । सग ही
है सुशील गुणवान । किन्तु उस पर नहीं
रानाका है प्यार । कौन फिर कह सके—
राना होगा कौन ?

तम०— पुरानी चाल है—
पुत्र बड़ा ही सदा राज्य पाया करे ।

सूर्य०—मानेगा फिर कौन पुरानी चालको,
राना अपने हाथ पिन्हादे जो मुकुट
जयमलको ? इच्छा प्रधान है भूपकी ।
जयमलको ही प्रजा जानती, मानती
अपना भावी भूप । किन्तु क्या सग ही
जन्म-स्वत्वको सहज छोड देगा भला ?
पृथ्वी ही या शान्त रहेगा साधु हो ?

तम०—पृथ्वीका क्या स्वत्व ?

सूर्य०— स्वत्व है शक्तिका।
सारी सेनाका पृथ्वी प्रियपात्र है!
तम०—तो है सारा राज्य अराजक, यों कहो।
सूर्य०—एक तरहसे उसे अराजक जो कहे,
तो कुछ अनुचित नहीं।
तम०— सुअवसर है यही।
रानाके भाई, समर्थ, फिर आप ही
छोड़ेंगे क्यों राज्य?
सूर्य०— राज्य मेरे लिए?
क्या! कहती हो मुझे भूप चित्तौरका?
सूझा कैसा तुम्हे घोर कुविचार है?
ऐसा कहना न अब, चलो, बस चुप रहो!

(तमसाका प्रस्थान।)

सूर्य०—है कैसा आश्चर्य!—बड़ा, आश्चर्य है!
तमसाने किस तरह हृदयकी बातको
जान लिया? था गया चारणीके यहाँ।
उसने मेरा हाथ देखकर यों कहा—
"सिंहासन मेवार-राज्यका आपको
मिलना ही चाहिए; न कुछ सन्देह है!"
उच्चाशाके बन्द द्वार पर उस घड़ी
सहसा जैसे एक प्रबल धक्का पड़ा।
हलचल सी मच रही हृदयके बीच है।
नई समस्यामें अशान्त मन हो रहा।
तबसे सोते और जागते, हर घड़ी,

हृत्तन्त्रीके तार यही झनकारते—
कानोंमे भी यही गूँजते शब्द हैं—
"राजाका हा अनुज, राज्यकी लालसा
मैं ही किसके लिए छोड दूँ ?" सुन यही
स्त्रीके मुखसे बात, कलेजा हिल उठा;
अपनी छाया देख चोर ज्यो चौंकता ।
रूढ अकारण हुआ,—इसी भयसे, कही
पीछेसे यह प्रश्न प्रकृत प्रस्ताव हो
हो न जाय ।—यह नीच नरोंका काम है !
नही, नही, मैं ऐसे हेय कुकार्यको
कभी करूँगा नहीं । बडा बीभत्स है
यह विचार ! मैं पलता जिसके अन्नसे,
करूँ उसीसे युद्ध अगर तो विश्वमे
कौन करेगा किस पर दृढ विश्वास फिर ?
अपने मनमे जो विचार उठता, वही
किसी औरके मुखसे जो फिर सुन पडे
तो कैसी बीभत्स भयानक बात वह
जान पडे ! दर्पणमे निज प्रतिबिंब सा
सहसा सब प्रस्ताव दिखाई देगया
आँखोंके सामने ! घोर ! बीभत्स ! यह
ऐसा निन्दित कार्य ! असभव है !

[पृथ्वीराजका प्रवेश ।]

पृथ्वी०— चचा !

सूर्य०—(चौंककर) कौन ? भतीजे पृथ्वी !

पृथ्वी०— हाँ मैं हूँ। अभी
चौंक पड़े क्यों आप ?

सूर्य०— नही, चौंका कहाँ ?

पृथ्वी०—कहिए, मुझसे आप छिपाते किस लिए ?

सूर्य०—सोच रहा था—नही नही—वह कुछ नहीं।
साधारण थी बात।

पृथ्वी०— चचा मेरे, वही
मुझसे कहिए—कहिए तो क्या बात है ?
आता जाता नित्य, न देखा आपको
कभी चौंकते।—कहो।

सूर्य०— कहूँ ?—था सोचता,
भाईको जो मृत्यु हुई तो कौन फिर
राजा होगा ?

पृथ्वी०— राजा होंगे संग ही।
वही बडे हैं।—इसकी चिन्ता व्यर्थ है।

सूर्य०—पुत्र, समस्या सरल न इतनी है।

पृथ्वी०— चचा,
क्या ऐसा है कठिन प्रश्न ? मैं तो यही
जानूँ, बेटा बडा राज्य पाता सदा।

सूर्य०—सदा नही। इतिहास उलटकर देख लो।
छोटेको भी कभी-कभी गद्दी मिले।

पृथ्वी०—जयमल को ? धिक्कार !

सूर्य०— लखा तुमने नहीं ?
पुत्र, तुम्हारे पिता उसीको चाहते
सबसे बढ़कर ।

पृथ्वी०—(चिन्ताके भावमे) लक्ष्य किया है। किन्तु जो
ऐसा ही हो, हो; क्या मेरी हानि है ?

सूर्य०—तुम उदार हो सरल हृदयके । राज्यका
मिलना तुमको नहीं असंभव कुछ ।

पृथ्वी०— मुझे !

सूर्य०—क्यो ? तुम हो बलवान, और सेना सभी
है अनुगत। फिर राजपुत्र क्या तुम नहीं ?

पृथ्वी०— (आश्चर्य से) मैं पाऊँगा राज्य !

सूर्य०— सुनो बेटा, तुम्हे
मैंने पाला बडे यत्नसे । गोदमे
रक्खा । चूमा किया प्यारसे । हृदय से
सदा लगाये रहा। तुम्हे जो राज्यके
सिंहासन पर बिठा सकूँ तो पूर्ण हो
इच्छा मेरी ।

[संग का प्रवेश ।]

संग०— चचा !

सूर्य०— कहो, क्या है खबर ?

संग०—जयमल—

सूर्य०— हाँ, क्या किया ?

संग०— कहींसे बालिका
एक पकड़कर लाया है । उसका पिता

रानाजीके पास इसी अभियोगको
आया है इस घड़ी । आप तो जानते,
उनकी कैसी धर्मनीति, कर्तव्यमे
अति कठोर है । रक्षा जयमलकी करो ।

सूर्य०—इस बारेमे पुत्र, न मैं कुछ कर सकूँ ।
होने दो उपयुक्त दण्ड ।

संग०— समझाइए
रानाजीको । वह अबोध बालक अभी ।

पृथ्वी०—जयमल बालक है अबोध ? चलिए, उसे
मैं ही दूँगा दण्ड दोषका । दुष्ट है !

सूर्य०—देखो जयमल यहीं आ रहा है ।

[जयमलका प्रवेश ।]

पृथ्वी०— कहो
जयमल, क्या तुम सचमुच कोई बालिका
हर लाये हो ? झूठ न कहना !

जय०— सत्य है
हर लाया हूँ एक बालिका सुन्दरी ।

पृथ्वी०—अच्छा तो अब उसे अभी तुम छोड दो ।

जय०—क्यों छोड़ूँ ? तुम क्यों हो आज्ञा दे रहे ?

पृथ्वी०—मैं हूँ तुमसे बडा, मुझे अधिकार है ।

जय०—मुझसे होगे बड़े; न यह मैं मानता ।

पृथ्वी०—उत्तर दो, उसको छोड़ोगे या नहीं ?

जय०—(सगर्व) दादा—

पृथ्वी०— बोलो, छोड़ोगे ? (गर्दन पकड़ना)

संग०— पृथ्वी, सुनो,
जयमलको दो छोड़ ।
पृथ्वी०— आप तो जाइए ।
(जयमलसे) छोड़ोगे, या नहीं ?
जय०— छोड़ दूँगा ।
पृथ्वी०— अभी
चलकर मेरे साथ सामने छोड़ दो ।
(पृथ्वीराज और जयमल का प्रस्थान ।)
संग०—पृथ्वी, इतने क्यों रूखे होते ? अभी
जयमल है नासमझ ।
(प्रस्थान के लिए उद्यत ।)
सूर्य०— संग !
संग०— क्या है चचा ?
सूर्य०—तुमसे जयमल जलता है ।
संग०— मालूम है ।
सूर्य०—और घृणा भी करता है ।
संग०— क्यों ? किस लिए ?
सूर्य०—तुम उससे हो बड़े, इसीसे ।
संग०— हाय रे
बालक, मूढ़, अबोध ! (प्रस्थान ।)
सूर्य०— संग तेरा चरित
है उदार अति उच्च !—किंतु तो भी—
[यमुना का प्रवेश ।]
यमु०— चचा !
मँझले दादा कहाँ गए, मालूम है ?

सूर्य०—क्यों यमुना ?

यमु०—　　मैं उनको देखा चाहती।

सूर्य०—क्यों ?

यमु०—　　सो तो मालूम नहीं।

सूर्य०—　　　　यह बालिका
अद्भुत है ! चल तुझे दिखा दूँ, साथ चल।

(दोनोंका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य

स्थान—रास्ता। **समय**—प्रातःकाल।

गाते हुए बालकोंका प्रवेश।

गजल । ताल कव्वाली।

अभी न निकले हैं सूर्य देखो, न पूर्व—आकाश जगमगाया।
दिनेशकी राह तक रही है मही; अभी झुटपुटा सुहाया ॥ अभी०
सभी तरफ है अभी अँधेरा, समस्त नीरव निकुंज भी हैं।
अभी पड़े सो रहे हैं भौंरे खिले द्रुमों पर, जिन्हें बसाया ॥ अभी०
ललाम लाली लिये ये बादल, अरुण-किरण से हुए हैं राजित।
फटा है जैसे हृदय अँधेरेका, खून उसका उमड़के छाया ॥ अभी०
वो सूर्य देखो निकल रहे हैं, निकलते ऊपरको चढ़ रहे हैं।
प्रभाकी छिटकी छटा जगतमें, प्रभाव बढ़ने लगा सवाया ॥ प्र०
चहक उठे हैं प्रसन्न पक्षी, चली हवा पुष्पगन्ध लेकर।
सुबहकी ठंडी हवाने आकर चँवर डुलाया, जगत जगाया ॥ अभी०

(प्रस्थान।)

(घड़े लिये हुए दासियोंका प्रवेश ।)

१ दासी—सुना, रानासाहब कल बहुत खफा हुए थे ।

२ दासी—सो तो होंगे ही, सो तो होंगे ही ,–किस पर हुए थे ?

१ दासी—अपने मँझले लड़के पिरथीके ऊपर । और किस पर ।

२ दासी—सो तो होंगे ही । क्यों खफा हुए थे ?

१ दासी—सुनती हूँ, पिरथी छोटी रानीके कुअँर जयमलको तरवारसे मारने चला था ।

२ दासी—क्यों जी सचमुच ? मारने तो चलेहीगा—मारने तो चलेहीगा ।—मगर क्यों मारने चला था ?

१ दासी—यही भाई-भाईका झगड़ा है । इसके सिवा राना छोटे लड़केको अधिक चाहते है कि नहीं !

२ दासी—हाँ सो तो है ही—सो तो है ही । प्यारी रानीका लड़का है कि नहीं । इस तरहका क्यों न हो ? सतजुगसे ऐसा ही तो होता चला आता है । यह देखो, राजा युधिष्ठिरने अपनी प्यारी रानीके लड़के भरतके लिए दूसरी रानीके लड़के बल-रामको वन भेजकर अपनी जानसे भी हाथ धोये थे । इस-तरहका तमाशा अब क्यों न होगा ?–लेकिन उसके लिए यों मारकाट न करनी चाहिए ।

१ दासी—मँझला कुअँर क्यों सहने लगा ?

२ दासी—सो तो सच है बहन । क्यों सहेगा ?—वह भी तो राजाका लड़का है, वह क्यों सहने लगा ?—लेकिन अब क्या होगा ?

१ दासी—रानाकी जैसी मर्जी है वैसा ही काम होगा ।

२ दासी—सो तो है ही । सो तो है ही। नही तो क्या मेरी मर्जीके मुताबिक काम होगा !—मगर मैं यह कह रही थी—

१ दासी—शायद रानाके बाद छोटा कुअँर ही गद्दी पावेगा ।

२ दासी—यहाँ तक ! इसमे अब अचरज ही क्या है जी । सो तो हो ही सकता है । यह देखो न, रामचन्द्रके मरने पर उनका छोटा लडका दुर्योधन ही तो राजा हुआ था । विधाता चाहे तो क्या नहीं हो सकता ?

१ दासी—विधाता नही री ! बल्कि कह कि छोटी रानी चाहे तो क्या नही हो सकता ?

२ दासी—वह एक ही बात है । मर्द के लिए प्यारी जोड़ू और विधाता एक ही चीज है ।

१ दासी—यह नहीं तो क्या ! देखो, रानाने बडी रानीकी लड़कीको एकदम पानीमे बहा दिया ! उसे एक बेवकूफ जानवरके हाथमे सौंप दिया है । उसकी दशा देखकर बुखार चढ़ आता है ।

२ दासी—बुखार तो चढ आवेगा ही—बुखार तो चढ़ आवेगा ही ।—मैं कहती हूँ, वह लड़की क्या सुसराल जा रही है ?

१ दासी—जा नही रही है तो क्या—लडकीका ब्याह होता है बापके घर रहनेके लिए ? सुसराल क्यो न जायगी ?

२ दासी—सो तो जायगी ही । सो तो जायगी ही ।— आहा, बड़ी अच्छी सुन्दर लडकी है ।

१ दासी—रानाका दामाद उसे लेने आया है । अब उसके बिना गए बनता है ?

२ दासी—हाँ जी, कही बन सकता है ?

१ दासी—चल । और जरा तेज चल न । चलती है जैसे सारी मिट्टी माड़ती जा रही है । जैसे पेटभर खानेको नहीं पाती ।

२ दासी—वाह, यह क्या जी । क्या हम हवामे उड़ते-उड़ते फिरनेके लिए आई हैं ? यह होता तो मालिक हमे महीना देता ! —बोलो, क्यो जी ?

१ दासी—चल, चल, अभी चल ।

२ दासी—चल न । धमका क्या रही है ?

(प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—अरावली पहाड़की तराईका गाँव ।

समय—तीसरा पहर ।

[शूरसिंह और उनकी रानी । कुछ दूर पर तारा पढ रही है ।]

शूर०—अभिनय अति अद्भुत विचित्र ससारका !

भाग्यचक्रका फेर ! चपल सौभाग्यको

लक्ष्मीकी लीला ! मनुष्य जो आज है

महाराज, कल वही हीन कगाल है ।

यत्न व्यर्थ यह प्रिये ! भाग्यका खेल है ।

रानी—खेल ? भाग्यका ? कैसा ? यह कुछ भी नही ।

क्षत्रियपुत्री हूँ, न दैवको मानती ।

अपने पौरुषसे मनुष्य निजभाग्यको

गढ़ लेता है, मैं तो जानूँ बस यही ।

शूर०—गढ़ लेता है ! प्रिये, तनिक सोचो सही ।

विश्व-नियमकी धाराके प्रतिकूल हो

ठहर सकेगा कौन ? शक्ति इतनी नहीं।
चार ओर घटनाओंका भारी भँवर
खींच रहा है; क्षीण मनुजका बाहुबल
क्या कर सकता वहाँ अकेले प्रियतमे ?
रानी— क्या कर सकता ? कर सकता है युद्धको,—
कायर सैनिक सदृश भाग सकता नही
कर्मक्षेत्रसे।
शूर०— जो हारे संग्राममे ?
रानी— तो वीरोंकी तरह मर लड़ता हुआ।
आयः यहाँ मनुष्य न तिनकेके सदृश
बहनेको, ले जाय लहर जिस ओरको।
जैसे जाती नाव विरुद्ध प्रवाहके
वैसे ही—हो अगर प्रयोजन तो—चलो।
शूर०—धीरे, धीरे, उतावली अच्छी नही।
तुम जो कहती वही ठीक जो मान ले,
तो फिर नल पर क्यो विपत्ति ऐसी पड़ी ?
राज्य गया, स्त्री छुटी, अतका यह हुआ—
हुए सारथी महारथी ऋतुपर्णके।
रानी— इसमे किसका दोष ? उन्हीका दोष था।
अपनी इच्छासे अवैध खेले जुआ।
अपने हाथों आप कुल्हाडो मार ली
अपने पैरोमे।
शूर०— विचार यह भूल है।
निज इच्छासे नही, दैवकी प्रेरणा
जो चाहे सो करे। घोर कलि—

रानी— कलि ? सुनो।
छिद्र मिला तब तो प्रवेश कलिका हुआ।
कलियुगको वह छिद्र दिया किसने ?

शूर०— प्रिये,
ऐसी बातें किया करो तुम किस लिए ?
दुःख यहाँ क्या तुम्हें ? रम्य यह स्थान है।
अरावलीगिरिकी उपत्यका, जिस जगह
झरने झरझर झरें, स्वच्छ मीठा भरा
पानी, चारों तरफ खूब है अन्न भी,
बड़ा यहाँ आराम—न कुछ भी क्लेश है।

रानी—सोनेका भी पिंजड़ा क्या बन्धन नहीं ?
निज इच्छासे वनमें रह कर भी सुखी
सोते हैं, पर पराधीन प्रासाद में
रहना है धिक्कारजनक सबके लिए।

शूर०—प्रिये, आज तुम अपनेको भूली हुई
बातें करती हो, अयोग्य यह बात है।
जो कुछ तुमने कहा, न वह पतिके लिए
हो सकता सम्मानजनक। यद्यपि लिखा
शास्त्रोंमें, जब राज्य युधिष्ठिरका गया,
वनमें जाकर बसे, द्रौपदीने कहे
थे तब ऐसे वचन!—सुना यह भी कभी
भैरवसे भगवती लड़ी थी। पर प्रिये,
तो भी यह मानना पड़ेगा सर्वथा
हिन्दूकुलकामिनी कठिन ऐसी नहीं—
ऐसी बातें कभी न उनको सोहती!

रानी—सच है! रणमे पीठ दिखाना सोहता
क्षत्रियको! तुम पुरुष विधाता बन गये;
सदा स्त्रियोंको अपने प्रति कर्त्तव्यका
देते हो उपदेश। न निजकर्त्तव्यको
आप पालते। स्वामी, तुम रणभूमिसे
भाग न आते अगर कायरोंकी तरह,
जो क्षत्रियकी तरह सामने युद्धमे
मरते, तो देखते, क्षत्रियोंकी स्त्रियाँ
कैसे होतीं सती वीर पतिके लिए—
चढती मैं सानन्द चिता पर।

शूर०— प्रियतमे,
मर जाता मैं तो फिर कैसे देखता
सती-धर्म सहमरण? और जो मान ले
वह भी, तो भी उससे मुझको लाभ क्या!
मैं जी जाता नहीं तुम्हारी मृत्युसे।

रानी—क्षत्रिय होकर डरो युद्धकी मृत्युको!
तुमको है धिक्कार!—हाय धिक्कार है!

शूर०—और युक्ति यह सुनो प्रिय, जो युद्धमे
मर जाता है वीर न वह फिर रण करे।
पर जो भागे, कभी युद्ध वह कर सके,
जय भी सभव।

रानी— युक्ति सर्वथा है वृथा।
कायरहीको युक्ति सैकड़ों सूझती।
सच्चे है जो शूर, तर्क करते नही—
जयलक्ष्मीको प्राप्त करें, अथवा मरे।

कन्या होती नही—पुत्र होता कही
मेरे !

शूर०— भ्रम होगया तनिक उसमें प्रिये।
किसका उसमे दोष, न जानूँ, किन्तु जो
होता कोई पुत्र, भागता वह नही—
इसका ही क्या है प्रमाण ?

रानी— है क्यो नही,
होता नही सियार सिंहिनीके कभी।

शूर०—अगर सिंहिनीका सियारसे ब्याह हो,
तो संभव भी है।

रानी— न किया मै चाहती
इस चर्चाको। (प्रस्थान।)

शूर०— है स्वभाव नवनीतसा
प्याराका। पर आज सुकोमल वह नहीं—
यह भी निश्चित। हाय विधाता कौनसी
सामग्रीसे स्त्रियाँ बनाई हैं सभी ! (प्रस्थान।)

तारा—नारी हूँ ! धिक्कार !—मुझे धिक्कार है !
क्यो न हुई मैं सुत ? नारीके जन्मको
धिक है !—पर किस लिए ? स्त्री हुई हीन क्यों ?
गार्गी, लीलावती, सुभद्रा सुन्दरी,
सावित्री, दमयन्ती, सीता, रुक्मिणी,
सती आदि क्या स्त्रियाँ नही थीं जन्मसे ?
स्त्री अबला क्यो ? हाथ-पैर उसके नही ?
हृदय नही ? मस्तिष्क नहीं ? है क्या नही ?
शक्ति, तेज, बल, शिक्षासे—अभ्याससे—

होता, बढ़ता। देखूँ मैं क्या कर सकूँ ?
कमल—सुकोमल हाथ बना लूँ वज्र से।
लूँ इनमे मैं खड्ग खुला, देखूँ भला
कर सकती या नही।—क्षोभ तुम कम करो
माता। गौरव गया हुआ लूँगी अभी।
राज्य शत्रुसे छीनूँगी छीना हुआ।
उज्ज्वल कुलको करूँ नाम तारा तभी।
देखूँ, क्या कर सकूँ। अकेली बालिका,
तो भी लड़की राजपूतकी हूँ। मुझे
भय कैसा ? मैं पुत्र हुई यद्यपि नही
तो भी उसका काम करूँगा सर्वथा। (प्रस्थान।)

चौथा दृश्य

स्थान—वन, कुछ दूरी पर एक मन्दिर।

समय—दोपहर।

[हथियारबद सग, पृथ्वी और जयमल शिकार मे लौट रहे हैं।]

पृथ्वी०—राह तो नही भूलो ?

संग—ना। यह राह मै जानता हूँ।

जय०—तुम पहले इस राहसे आये थे क्या ?

सग—कई बार।

जय०—कब ?

सग—परसों ही आया था।

पृथ्वी०—क्यो ? यहाँ क्या ? किसकी खोजमे ? क्या ढूँढ़ने ?

सग—एकान्त।—

पृथ्वी०—एकान्त—सो तो घरमे ही मिल सकता है। आँख मूँद लेनेहीसे एकान्त होजाता है।

सग—और सन्नाटा।

पृथ्वी०—कानोमे उँगली लगानेहीसे हो जाता!

[गाते गाते चारणी का प्रवेश ।]

सग—यह कौन है?

पृथ्वी०—वही तो! कोई जादूगरनी है क्या!

चारणी का गान।

बिहाग—तिताला।

सामुहे पाछे अगम असीम-
अन्धकारकी रासि वही है उमही उत्कट भाम ॥स०॥
चिनगारीसम हम सब याह अति अन्धकार के बीच--
मालुम नही, कहाँ से आव; लाव कोई खीच ॥सा०॥
कितनी राह दिखावै—सो कुछ देख न पावै हाय—
खोजत खोजत राह, बिले ह याई ?' मँ महँ धाय ॥सा०॥
सहस विराट मरनके देखो अन्धकारकी रासि—
करत मनों उपहास, दीपके पीछे, है अविनासि ॥सा०॥
सागरके हिलकोरन पृथ्वी टूक टूक ह्वै जाय,
छीन नछत्र दिगन्त-नीलिमा बिच डूबत असहाय ॥सा०॥

जय०—गाना भी गाती है।

पृथ्वी०—वही तो! लेकिन इसके गानेका कुछ अर्थ ही समझमे नही आता।

सग—अद्भुत है! इस निर्जन वनभूमिमे अकेली फिरती है!

जय०—कौन है तू?

पृथ्वी०—हाँ, ठीक बता कौन है तू!

सग—कौन हो तुम मैया ?

चारणी—मैं वनमे विचरनेवाली तपस्विनी हूँ।

पृथ्वी०—तपस्विनी ? यह कहीं हो सकता है ?

चारणी—क्यो नही हो सकता बेटा ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है।—क्यो नही हो सकता, सो तो समझमे नहीं आता।

जय०—ना ना, ये सब चोर हैं। दिनको तपस्विनी बनकर घूमती हैं, रातको चोरी करती हैं।

पृथ्वी०—ठीक है! जरूर यह चोर है। दिनको तपस्विनी बनकर घूमती है।

चारणी—इस तरहकी चोर तपस्विनी कितनी देखी हैं बेटा ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है—इस तरहकी चोर तपस्विनी मैंने तो शायद अपने होशमे कभी कोई नही देखी।

जय०—तो यह फकीरिन है।

पृथ्वी०—बेशक फकीरिन है! मैं भी यही सोच रहा था। फकीरिन है। जरूर फकीरिन है।

चारणी—बताओ बेटा, फकीरिन वनमे क्या करने के लिए रहेगी ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है; वनमे भीख ही कौन देगा ? तो फिर तुम कौन हो, खुलासा करके कहो न!

चारणी—मैं चारणी हूँ।

सग—आप चारणी हैं ? यहाँ क्या आपका आश्रम है ?

चारणी—यहाँ नहीं है। लेकिन बहुत दूर भी नहीं है। पास ही मेरी माताका मन्दिर है।

सग—हाँ, चाचाजीके मुँहसे एक दिन आपका हाल सुना था ।

जय०—वही है !—आप हाथ देखना क्या नहीं जानती ?

चारणी—(हँसकर) कुछ कुछ जानती हूँ ।

पृथ्वी०—आप आगेका हाल बता देती हैं ? अच्छा, बताइए, हम तीनोंमे मेवारका राना कौन होगा ?

चारणी—(कुछ देर चुप रहा कर) सग मेवारका राना होगा ।

(गीत गाते गाते चारणीका प्रस्थान ।)

पृथ्वी०—झूठ !—बनी हुई है !

जय०—लेकिन उसने नाम किस तरह जान लिया ?

पृथ्वी०—यह भी ठीक है ! तो जान पडता है, उसने ठीक ही कहा है !

जय०—(चिन्ताके साथ) वही तो ! चलो घर चले। देर होगई।

सग—(स्वगत) मै विश्वास नही करता कि मनुष्य होनीकी बात बता सकता है। और बता सकता तो 'होनी' और भविष्यद्वादका खण्डन किया जा सकता। अगर वह हो सकता है, और नहीं भी हो सकता, तो उसे यह आगेसे किस तरह बता दे सकती है ?—पहेली पहेली—सब—पहेली है।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—सूर्यमलके घरका अन्त पुर ।

समय—तीसरा पहर ।

[सूर्यमल अकेले खडे है ।]

सूर्य०—कानोमे है गूँज रही तो भी वही
विकट पहेली सी भविष्य-वाणी अहो !—
मैं पाऊँगा राज्य। बुझाना चाहता

दुस्साहसकी इच्छासे इस अग्निको ।
वैसे ही यह रानी तमसा, मन्थरा
ऐसी, कौशल-कुटिल युक्तियोका घना
ईंधन डाले ।—नहीं नहो सभव नहीं !
करूँ न ऐसा पाप । वृद्ध हैं रायमल ।
रखते मुझ पर स्नेह और विश्वास भी ।
सेनापति कर दिया मुझे । उनसे करूँ
मैं ऐसा विश्वासघात ! होना नही !—

(नेपथ्यमें आभूषणोंकी ध्वनि ।)

यमुना है आ रहो, है जा रही अभी
अपने पतिके घरको । मिलने के लिए
आई है ।

[यमुनाका प्रवेश ।]

यमुना— तुम यहाँ चचाजी ! मै विदा
होती हूँ ।

सूर्य०— क्या अभी ?

यमु०— हाँ अभी जा रही,
दो शुभ आशीर्वाद ।

सूर्य०— सदा सुखसे रहो ।
जाओ बेटी अपने स्वामीके भवन ।
गुरुजनसेवापरायणा रहना सदा,
पतिव्रता, सर्वथा कुटुम्बहितैषिणी ।
बेटी, रो मत ।

यमु०— नही, न रोऊँगी चचा !
क्या जाने, क्यो रोनेको जी चाहता ।

ऊधम किए अनेक, खिझाया आपको
मैंने अब तक। क्षमा कीजिएगा चचा !

सूर्य०—यमुना, मेरे कन्या कोई भी नहीं !
अपनी लड़की समझ तुझे पाला किया
अबतक। अबसे बेटी, कन्या-स्नेहके
सुखसे वंचित यह तेरा चाचा हुआ।
बेटी यमुना, आज सुदिन शुभलग्न में
जाओ तुम ससुराल। निज भवन है वही
स्त्रीका यह पर-भवन पिताका गेह है।
जाओ अपने यहाँ जिस तरह पार्वती
परिणयके उपरान्त गई कैलासको।
मेरी यही असीस, प्यार पतिका मिले !
गौरवका सौभाग्य सुलभ हो सर्वदा।
पति जो रूखे वचन कहे लगते हुए,
तुम कहना प्रियवचन। अगर स्वामी लड़े
तो सहना चुपचाप, बुरा मत मानना।
सतियोंका सर्वस्व परमगति पति सदा।

यमु०—चाचाजी, मेरा प्रणाम स्वीकार हो।
जाती हूँ।

सूर्य०— सुख आयु बढ़े।

(यमुनाका प्रस्थान।)

सूर्य०— हा खेद है !—
लक्ष्मी सी यह लडकी उस चांडालको
भैयाने दी सौंप; पिन्हा दी कंठमें
बन्दरके मणिमाला ! पाभूरावहा !

अगर जानता मूल्य कहीं इस रत्नका !—
सिर पर रखता इसको, ठुकराता नहीं
पैरोंसे ! (दूरपर कहारोंका शब्द ।)
वह मेरी बेटी जा रही
शिविका पर । ओ निठुर बालिका, छोड़कर
मुझे कहाँ जारही ?

[तमसाका प्रवेश ।]

तमसा— गई यमुना ?

सूर्य०— गई !
चला गया दिन, अन्धकार घरमें हुआ !

तम०—किसके कारण व्यग्र और व्याकुल रहो—
आँसू बरसे ? क्यो इन गैरोके लिए
व्याकुल होते ? समझ न पड़ता कुछ मुझे ।

सूर्य०—समझ सको क्या ? हाय, तुम्हारा है नहीं
उससे कुछ सम्बन्ध रक्तका—गोदमे
लेकर पाला नहीं उसे ।

[दूरपर संगका तेजीसे प्रवेश ।]

तम०— जाते कहाँ
संग कुअँर तुम ?

संग— वैद्य बुलाने ।

तम०— क्यो ?

संग— पिता
पीड़ित पड़े अचेत ।

तम०— किस तरह ? क्या हुआ ?

सग—कहता हूँ, मैं प्रथम बुला लूँ वैद्यको । (प्रस्थान ।)

सूर्य०—जाऊँ देखूँ,— (प्रस्थान ।)

तम०— ईश्वर, बस हो यह वही

मूर्च्छा, होती दूर नही जो—

[सारगदेवका प्रवेश ।]

सारग०— आपने

बुलवाया था मुझे ?

तम०— कौन ? सारग ? हाँ,

बुलवाया है मैने ही ।

सारग०— क्यो ? किस लिए ?

तम०—मतलब है । सारग, कहूँगी, स्थिर बनो ।

पर पहले यह करो प्रतिज्ञा—तुम कहो

प्रकट करोगे नही, कहूँगी जो, उसे ।

सारग०—व्यर्थ प्रतिज्ञा । क्या तुम यह जानो नही,

आज्ञाकारी सदा तुम्हारा दास हूँ ?

तम०—मुझको है मालूम, मगर तो भी अभी

करो प्रतिज्ञा । बड़ा कठिन आदेश है ।

सारग०—तो फिर कह दो प्रथम, कौन आज्ञा करो,

कर सकता हूँ तभी प्रतिज्ञा ।

तम०— अन्यथा

कहा करोगे नही ? न खाओगे कसम ?

तुम्हे स्मरण है, उस दिन, प्रातःकालमें,

गभीराकी रेतीमे, भूखे, विकल,

पहने कपड़े फटे, शीतसे काँपते,

भीख माँगते देख तुम्हे, आई मुझे
दया । याद है तुम्हें ?

सारंग०— याद है सब मुझे ।

तम०—तुमको सादर लाई मैं चित्तौरमे—
भर्ती करवा दिया फौजमे । याद है ?

सारंग०—खूब याद है ।

तम०— सुनो, इसीसे आज तुम
सेनापति हो । पैदलसेना पाँच सौ
है अधीन ।

सारंग०— हाँ माता तुम हो धर्म की ।
मुझे बचानेवाली हो ।

तम०— तो बस करो
अभी प्रतिज्ञा यही कहूँगी जो उसे
पूर्ण करोगे चुपके, कुछ पूछे बिना ।

सारंग०—यही प्रतिज्ञा करता हूँ ।

तम०— आओ चलो (प्रस्थान ।)

छठा दृश्य ।

स्थान—सिरोही राज्य । पाभूरावका विलासभवन ।

समय—रात ।

[मुसाहबों सहित पाभूराव ।]

मुसाहबोंका गीत ।

गजल ।

छनी है भंग, उसका रंग आखो बीच आया है ।
नशेमें चूर है; भरपूर विजयाने छकाया है ॥

दो०। बैठे सुनते रातदिन कानोंही के पास—
बजती जैसे वीन है; बढता है उल्लास ॥
सदा घोटो, सदा छानो, यही जीमे समाया है।
छनी है भंग० ॥
दो०। कैसी इसकी सिद्धि है! हम सबही सशरीर—
चले जा रहे स्वर्गको, जैसे कोई वीर ॥
इसे जो 'सिद्धि' कहते हैं, उन्होने तत्त्व पाया है।
छनी है भग० ॥
दो०। पीते जो गाँजा चरस, वे है अर्वाचान।
सस्ती हो विजया; वही है सबसे प्राचीन ॥
सभीसे है सरस मीठी, इसीको मुह लगाया है।
छनी है भग० ॥
दो०। हीरोमें जैसे बडा कोहनूर, त्यो भग,
सभी नशोमें श्रेष्ठ है; इसकी नई उमंग ॥
इसे तो सोमरस ही आजकल सबने बताया है।
छनी है भग० ॥
दो०। लिखी पुराणोमें, स्वय भोला खाते भग।
—खाते हो तो हम करें चलकर उनका संग—
स्वय या व्यासने ही भंग खाकर सब बनाया है।
छनी है भग० ॥
दो०। जगते जगते नादका कैसा होता स्वाद।—
भग-भवानी-भक्त ही रख सकता यह याद ॥
हरेक झोका इसीकी मौजका आना सुहाया है।
छनी है भग० ॥
दो०। बहुत अगर पी लीजिए, तो करती है तग।
इससे थोड़ी ही पियो सदा रसीली भग ॥

हँसो ह -हः करो ही-ही, यही सुख मनको भाया है।
छनी है भंग० ॥

दो०। जो फकीर भी भंगको छाने नित कर चाह।
वह अपनेको जानता दुनियाभरका शाह ॥
सभी है तुच्छ यह सबको सबक इसने पढाया है।
छनी है भंग० ॥

पाभू०—देखो—

मुसा०—देखो देखो—

पाभू०—मैं पाभूराव—

मुसा०—(दीनभावसे) यह पाभूराव—

पाभू०—सिरोहीका राजा हूँ।—

मुसा०—(तद्रूप) हाँ—

पाभू०—इतना ही काफी है।

मुसा०—और चाहते क्या हो?

पाभू०—तो फिर लोग कहते क्यों है—

मुसा०—(तद्रूप) ठीक है।

पाभू०—कहते क्यो है कि "मै क्या हूँ? रायमलका दामाद ही न!"—कहते क्यो हैं?

मुसा०—(तद्रूप) कहते क्यो है?

पाभू०—बल्कि कहना चाहिए कि "रायमल क्या है? पाभूरावका ससुर ही न!"

मुसा०—(तद्रूप) पाभूरावका ससुर ही न!

पाभू०—देखो सब मुसाहबो! तुम बिलकुल निकम्मे होते जा रहे हो। खुशामद करते हो, सो भी उत्साहके साथ नही कर

सकते ? मैं जो कहता हूँ वही दोहराते जाते हो !—इससे जी खुश नही होता।

मुसा०—ठीक ! इससे जी खुश नही होता !

पाभू०—देखो, अबकी मैं जिस औरतको व्याह कर लाया हूँ वह वज्र गूँगी है।

मुसा०—(कुछ कुछ उत्साहके साथ) वज्रगूँगी ! एकदम गूँगी !

पाभू०—मगर सुन्दरी है—एकदम साक्षात् अप्सरा है, केवल नाचती नही—यही ऐब है !—

मुसा०—(तद्रूप) हाँ—यही ऐब है। नाचती नहीं, यही ऐब है—

पाभू०—फिर !—मै कहता हूँ कि फिर अगर इस तरह 'टुप'-से बोलकर टाल देनेकी चेष्टा करोगे तो काम नही चलेगा !—समझ रक्खो !

मुसा०—(उत्साहके साथ) समझ रक्खो !—काम नहीं चलेगा समझ रक्खो।

पाभू०—औरत है कि साक्षात विद्याधरी है।—साक्षात !—

(मुसाहबोंमेसे किसीने 'साक्षात' कहा, किसीने चुटकी बजाई और किसीने मटक दिया।)

पाभू०—बहुतसी औरते देखी है—मगर मेरी यमुना एकदम—

(मुसाहबोंन तरहतरहके इशारोंसे श्रेष्ठताका भाव प्रकट किया।)

पाभू०—देखनेमे कैसी है—जानते हो ?—जैसे-जैसे—बिनादेखे ठीक समझमे नही आ सकता।

मुसा०—सो ठीक है !—बिना देखे समझमे नहीं आ सकता !

पाभू०—देखोगे। अच्छा तुम लोगोको दिखाता हूँ।—ए चोपदार !

मुसा०—चोपदार ! चोपदार !

चोप०—(प्रवेश करके) महाराज !

पाभू०—अभी मेरी रानीको यहाँ ले आ। खड़ा मुँह क्या ताक रहा है !—जा !

१ मुसा०—(विशेष उत्साहसे) जाता है क्यों नहीं रे !

चोप०—यहाँ राजा साहब ?

पाभू०—यहाँ नही तो कहाँ ! नही क्या वहाँ !

२ मुसा०—(तद्रूप)—नहीं तो क्या वहाँ ? हूँ.—

पाभू०—कहो, राजा साहबकी आज्ञा है।

३ मुसा०—(तद्रूप) हाँ आज्ञा है !

[विस्मित होकर चोपदारका प्रस्थान।]

पाभू०—लेकिन वह मुझे बहुत मानती है—

मुसा०—जरूरतसे ज्यादह !

पाभू०—जैसे—(बहुत सोचकर) बिलकुल जैसे—कुत्ता !—

मुसा०—हाँ, ठीक ! जैसे कुत्ता !

पाभू०—फिर ! देखो कहे देता हूँ, यो करने से काम नहीं चलेगा। काम नही चलेगा।

मुसा०—ना ना ना। काम नही चलेगा।—कहे देता हूँ—

[बुढ़िया दासीके साथ यमुनाका प्रवेश।]

पाभू०—यमुना आगई ?

यमुना—(चोपदारसे) मुझे यहाँ क्यो ले आया ?

बुढ़िया—हाँजी ! सच ता है ! हम लोगोको यहाँ क्यो ले आया ? मै कहती हूँ ओ दरोगा—मैं कहती हूँ—ओ—

पाभू०—तू बुढ़िया जा !

१ मुसा०—हाँ तू बुढ़िया जा—

बुढ़िया—क्यों ? मैं क्यों जाऊँ ?

२ मुसा०—इस दरबारमें तेरा कुछ काम नहीं बुढ़िया ।

३ मुसा०—हाँ बुढ़िया ! "वृद्धस्य वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते" लिखा अवश्य है । किन्तु सर्वत्रैव इस तरहके विचारसे तो काम नहीं चल सकता बाबा ।

पाभू०—घूँघट तो मुँहपरसे हटाओ प्यारी !—(अपने हाथसे यमुनाका घूँघट खोलकर) देखा चेहरा ?—यमुना !—प्राणेश्वरी ! एकबार मेरे पास खड़ी तो हो जाओ प्यारी ! जरा ये लोग देख तो लें कि तुम मेरी बगलमें कैसी अच्छी लगती हो ।

बुढ़िया—ये कौन है ।

पाभू०—ये चाहे जो हों, तेरा क्या ? निकल जा यहाँसे ।

मुसा०—(साथ ही साथ) निकल हरामजादी ।

यमुना—मुझे यहाँसे ले चलो !

बुढ़िया—सच तो है ! यहाँ क्यों ले आया ! मैं कहती हूँ ओ कलमुहे !—(चोपदारको धक्का देना ।)

चोप०—अः धक्का क्यों देती हो ?

पाभू०—यमुना ! जरा मेरे पास आकर खड़ी होजाओ !—नहीं तो जाने न दूँगा ।

बुढ़िया—अच्छा जरा बाईं तरफ खड़ी हो जा बेटी ! नहीं तो जान न बचेगी ।

(बुढ़ियाके कहनेके अनुसार यमुना पाभूरावके बाईं ओर खड़ी होती है ।)

पाभू०—(मुसाहबोंसे) कहो ? कैसी अच्छी लगती है, कहो न।

मुसा०—वाह वाह; कैसी अच्छी लगती है—

गान।

मुसाहबोंका गान।

तर्ज थियेटर।

आहा कैसी अच्छी जोड़ी;
ओहो कैसी अच्छी जोड़ी ॥ आहा० ॥
जैसे काबुलका हो गदहा
उसके पास अरबकी घोड़ी ॥ आहा० ॥
घनकी गोद इन्द्रधनु जैसे,
कृष्णपास बलदाऊ तैसे,
नाच संग तबलेकी चाटी,
मीठे संग नमकीन कचौड़ी ॥ आहा० ॥
मदिरा साथ हरि-भजन जैसे,
पके आम संग दूध पकाया,
लैया साथ भुने पापड़ ज्यों,
हो अफीम के संग ज्यों रबोड़ी ॥ आहा० ॥
ज्वरके संग विसूचिका जैसे,
ब्याह संग ज्यों रोशनचौकी,
मरणकाल संग रामनाम--रट,
वैसी-वैसी है यह जोड़ी ॥ आहा० ॥

(सबके आगे पाभूराव, यमुना, बुढिया दासी, उनके पीछे मुसाहबलोगों-का गाते गाते जाना।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—अंत:पुर ।

समय—आर्धी रात ।

[पलग पर राना लेटे हुए है सग, पृथ्वीराज और जयमल उनके पास बैठे है ।

राय०- कितनी अब है रात सग ?

सग—   बारह बजे

राय०—तब भी बैठे हुए यहाँ तीनों जने !—
इतनी बीती रात ! उठो, बस हो चुका !
पृथ्वी, बेटा जयमल, जाओ, सो रहो ।
जागोगे कब तलक ! सभी तुम एक से
भक्त पिताके, यह निश्चय मै जानता ।
पुत्र सग, तुम बैठो, आवे नीद जब
तब तुम जाना, फिर जयमलको भेजना,
या पृथ्वीको ।—यह क्या ! जाते क्यों नही ?

पृथ्वी०—पूज्य पिता, मै थका नही ।

जय०—   जब आप यो
रोग भोगते पडे पलँग पर हैं, भला
तब हमका सुख—नींद किस तरह आसके ?

राय०—धन्य पिताकी भक्ति !—कहा करता सदा
शूरतान यो, "इस जगमे बिलकुल नही
स्नेह, दया या ममताका लवलेश हैं ।
मतलबके ही यार सभी; सब धूर्त हैं ।"

जान पड़ा, थी मिथ्या उसकी धारणा ।
जयमल-जल, (जलपान) लग रही मुझे सर्दी बड़ी
शीत बढ़ रहा ! यह क्या ! ज्वरसा चढ़ रहा !
वैद्य बुलाओ सग !—नहीं, ठहरो--नहीं ।
नहीं दवाका काम । दवा—क्या काम है ।—
दवा मिटावे रोग ? न खाऊँगा दवा !
दवा करूँगा नही !—आग सी लग रही
हृदय बीच ! यह कैसी--कैसी है जलन !

पृथ्वी०—जल दो, सग !—नही—चाहिए नहीं--
जाने दो ।—आ रही नींद ।—सब देह ज्यों
शिथिल हो रही । अहो, यही क्या मौत है !
इतनी—ऐसी—स्निग्ध—शान्ति-सुख-दायिनी !
यह विषादकी तरह लिपटती गमे इन
अगोंसे ।—आरही नींद (निद्रा)

पृथ्वी०—(देरतक चुप रहकर) जयमल ! पिता
शायद जीवित नही !—नीद यह है वही
जो खुलती ही नही ।—जरा देखो !

सग— कहो—
लाऊँ जाकर वैद्य ।

जय०— वैद्यका काम ही
क्या है ? नाड़ी देख जान लूँगा अभी—
अटकल मुझको है ।

सग— विलम्ब फिर क्यों करो—
देखो नाड़ी ।

जय०—(नाड़ी देखकर) सच, दादा, नाड़ी नहीं ।

पृथ्वी०—ठीक कहा था मैंने !

जय०— सारे अंग तो

ठंडे हिमसे हुए; मृत्यु निश्चय हुई।

सग—चलती है कुछ साँस ?

जय०— साँस ही अब कहाँ ?

प्राण नहीं—सब स्तब्ध—

पृथ्वी०— करोगे, क्या, कहो ?

जय०—तो समझूँ क्या राना अबसे सगको ?

पृथ्वी०—राना है बस वही, रखे तरवारका

बल जो सबसे अधिक—अभी इस बातका

हो जावे फैसला।—सग ! तरवार लो।

सग—पृथ्वी ! यह क्या ! सिड़ी हुए हो क्या !

पृथ्वी०— नहीं,

खींचो बस तरवार।—अभी हो फैसला—

राना होगा कौन राज्य मेवारका।

सग—मुझे नहीं पर्वाह, न चाहूँ राज्य मैं।

पृथ्वी०—राज्य न चाहो !—ऐसी छोटी बातको

सुनना मैं चाहता नहीं।—सब झूठ है !

राज्य न चाहो ?—लो जल्दी तरवार लो।

सग—सच कहता हूँ पृथ्वी ! मुझको राज्य यह

नहीं चाहिए। तुम, अथवा जयमल, इसे

भोग करो।

पृथ्वी०— वह बात चारणीकी तुम्हें

भूल गई क्या ?—"राना होंगे सग ही !"

मैंने भी उस समय कहा था—"होयगा
राना पृथ्वीराज" । परीक्षा हो अभी—
बड़ा बाहुबल, या दैवज्ञ-विचार है ।
लो बस लो तरवार-वार मेरा सहो ।
आज तुम्हारे अथवा मेरे रक्तसे
तर होगी यह भूमि ।

संग— कहो क्या ? मैं करूँ
युद्ध राज्यके लिए पिताकी लाश पर ?
ठहरो भाई ! राज्य न मैं चाहूँ ।—सुनो,
पृथ्वी ! है यह राज्य तुम्हारा !—मैं कसम
खाता हूँ,—यह राज्य न मुझको चाहिए ।

पृथ्वी०—कुछ न सुनूँगा मैं, जल्दी तरवार लो ।

(पृथ्वी का तरवार लेकर संग पर आक्रमण करना और संग का तरवार खींचकर अपनी रक्षा करना ।)

संग—ठहरो, क्या कर रहे ! सुनो पृथ्वी—सुनो ।

पृथ्वी—कायर ! है धिक्कार ! डरो यों मृत्युको !
इतना डरते !—सभी मरेंगे एक दिन ।—
इतना डरते ! लड़ो—बचोगे यों नहीं ।

(फिर आक्रमण करना और संग का आँख में घायल होना ।)

संग—ठहरो-ठहरो, कठिन घाव मेरे लगा ।

पृथ्वी०—युद्ध करो—बस युद्ध; सुनूँगा कुछ नहीं ।
जीता छोड़ूँ नहीं आज तुमको ।

[दोनोका युद्ध । सूर्यमलका प्रवेश ।]

सूर्य०— अरे

यह क्या ! यह क्या ! युद्ध भाइयोका ! यहाँ !!—
रुग्ण पिताके शयन-गेहमे !!! बस रुको !
ठहरो पृथ्वी !

(दोनोका रुक जाना ।)

[रानाका उठ बैठना ।]

पृथ्वी०— यह कैसा आश्चर्य है !

उठ बैठा मृत !!!

राय०— मृतक नही । मै तो अभी

मरा नही हूँ । इसी बीचमे गिद्ध या
मांसाहारी श्वान शृगालोकी तरह
छीना-झपटी शव लेकर करने लगे ?—
भक्त पिताके बहुत बडे तुम लोग हो !
समझ न पडता मुझे, स्वप्न या सत्य है !—
पृथ्वी ! जयमल ! सग !—अरे यह क्या ! तुम्हे
इतनी जल्दी ? ठहर सके दम भर नही ?
कर लेते तुम मृतका अन्तिम कर्म तो !—
साधारण जो मूर्ख कहाते हैं कृषक
उनको भी सकोच—शीलका ज्ञान है ।—
तुमको है धिक्कार ! (लम्बी सास लेकर) पिता सब मूर्ख है ।
सन्तानोके सुख पानेको जन्मभर
नीद-भूख सब छोड़ यत्न करते रहे ।
किन्तु पिताकी ओर उठाकर आँख भी

नही देखते पुत्र दुःख-आपत्तिमे !—
दुःख उठाकर पिता जमा जो धन करे
उसे उड़ाते सुखसे ! हा—धिक्कार है !
जयमल ! पृथ्वी ! सग ! अरे यह क्या—

जय०— पिता,
युद्ध न मैंने किया ।

राय०— सत्य है ! सत्य है !
युद्ध न तुमने किया । किन्तु पृथ्वी !—किया
तुमने क्या !

पृथ्वी०— अपराध हुआ मुझसे पिता,
क्षमा कीजिए !

राय०— क्षमा न कर सकता कभी ।
साधारण अपराध नही है; यह बडा
भारी है अपराध । नही इसकी क्षमा ।

पृथ्वी०—पैरो पडकर क्षमा-प्रार्थना मै करूँ ।
पछतावा है बडा—क्षमा कर दीजिए ।

राय०—ऐसे ही आचरण तुम्हारे नित्य मैं
देखा करता ।—जयमल पर, उस दिन, सुना
तुमने ले तलवार किया था आक्रमण ।
महल, डाकुओंका अड्डा है यह नहीं ।
तुमने यह अपराध बड़ा भारी किया—
देशनिकालनेका देता हूँ दण्ड मैं !
छोडो बस मेवार-राज्य—चाहे जहाँ
जाओ । अपना राज्य बाहुबलसे कहीं
अलग बसाओ । जाओ, छोड़ो राज्य यह ।

सूर्य०—रानाजी !—
राय०—　　　　चुप रहो सूर्यमल ! हो चुका ।
मेरी आज्ञा कठिन 'नियति'के तुल्य है ।—
टल न सके वह और न कोमल हो सके ।
पृथ्वी—जाओ । (सिर झुकाये हुए पृथ्वीराजका प्रस्थान ।)
—और संग तुम ?
सूर्य०—　　　　　　　　संग ! मैं
धीरे, शान्त, स्थिर तुम्हे जानता था, मगर
तुम भी यो उन्मत्त हो गये ?
राय०—　　　　　　　　सूर्यमल,
ठहरो ।—बोलो संग, किया यह आज क्या ?
—फिर भी चुप हो ?—तुमको कुछ कहना नहीं ?
संग—कुछ भी कहना नहीं ।
सूर्य०—(आश्चर्यके साथ)　　　　संग !
राय०—　　　　　　　　　　समझा अहो,
लालनपालन इतने दिन मैंने किया
जो कुछ, सो सब व्यर्थ गया—ज्यो राखमे
आहुति डाली, अथवा उससे भी अधम—
पाला विषधर दूध पिलाकर गोदमे !—
यह उत्तम है ! उत्तम है ! दो पुत्र यो
रुग्ण पिताके पलँग—पास बैठे हुए
देख रहे थे राह, मरेंगे कब पिता !
मरा जानकर उसे, वहीं पर राज्यके
पानेको विग्रह-विवाद करने लगे ।—
योग्य यही प्रतिदान पिताके स्नेहका !

जो सोचा हो तुमने, मेरा स्नेह यह
धो डालेगा सभी तुम्हारी कालिमा;
ढकदेगा सब घाव; किये अपराधको
क्षमा करेगा; तो तुमको धोखा हुआ।
स्नेह, स्निग्ध जलधारा बरसाता सही;
किन्तु वही फिर वज्रपात भी कर सके !
सुनो सग—यह राज्य तुम्हे मिलना नहीं,
राना होगा जयमल। देखो सूर्यमल !—
अभी राज्यमें कर दो इसकी घोषणा।

(फिर सो रहना।)

(पर्दा गिरता है।)

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—रानाका अन्त पुर।

समय—दोपहरके लगभग।

[आधे लेटे हुए राना। सामने सूर्यमल।]

राय०—पाया कुछ भी पता न तुमने संगका ?

सूर्य०—रानाजी कुछ नहीं—एक नौकर अभी
लाया चिट्ठी एक सगके हाथकी—

राय०—देखूँ चिट्ठी (लेकर पढना)—मन्त्रीजी इसको पढ़ो !
पढ न सकूँ मैं, क्षीण दृष्टि मेरी हुई।

सूर्य०—महाराज जो आज्ञा (लेकर पढना)—इसमे सगने
लिखा—"श्रीचरणमे प्रणाम है कोटियों।
मैं जानूँ, विश्वास पिताको है यही—
'मुझे राज्यकी चाह', राज्यहीके लिए
जीवन्मृत रोगार्त्त पिताके पास मै
पृथ्वीसे लड पडा', 'राज्यहीके लिए
करता हूँ विद्रोहमन्त्रणा'; 'सैन्यको
देता हूँ उत्कोच'—यही उनसे कहा
जयमलने। जाता हूँ इससे आज मैं
राज्य छोडकर। राज्य न मुझको चाहिए—
कई बार कह चुका पिताके सामने।

पर, उनको विश्वास नहीं इसका हुआ ।
आशा है विश्वास आज होजायगा ।
पूज्य चचाजी, जो कुछ हो मैंने किया
अनुचित या अपराध, क्षमा कर दीजिए ।—
श्रीचरणोमे करूँ यही बस प्रार्थना ।
—भाई जयमल ! आज तुम्हारी राहका
कण्टक भी कट गया, मिटी आपत्ति सब ।"

राय०—यह अच्छा है ! सूर्य ! यही प्रतिदान बस
अच्छा है । हे ईश्वर ! मैं तो यह कहूँ—
पुत्र न हो, हे ईश, शत्रुके भी कभी ।—
जाने दो । जो होना था सो हो गया ।—
जाने दो, बस द्वार बन्द कर लो सभी !
अति उत्तम है !—जाओ भाई ! मै बहुत
थका हुआ हूँ ।—सोनेको जी चाहता ।

(सूर्यमलका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—बिदोर ।

समय—तीसरा पहर ।

[शूरतान और उनकी रानी ।]

शूर०—रानी ! तारा कहाँ गई ?

रानी— वह तो गई
है शिकारको, सब शिकारियोंके सहित ।

शूर०—है बालिका विचित्र—

रानी— बालिका अब नही
है वह । हुई जवान । शीघ्र उसके लिए
वर ढूँढ़ो ।

शूर०— वर कहाँ ?

रानी— सदासे तुम स्वय
उदासीनसे रहते हो हर काममे ।

शूर०—'उदासीन ?' इस पृथ्वीके ऊपर, प्रिये,
सब विपत्ति-बाधा विघ्नोके बीचमे,
उदासीनता ही यथार्थ सन्धान है ।

रानी—कैसे ?

शूर०— 'कैसे ?'-कार्य करोगे ही नहीं,
भ्रम होनेकी कोई भी सभावना
नही रहेगी । कार्य करोगे जो, तभी
होसकता भ्रम ।

रानी— युक्ति तुम्हारी यह नई
नहीं समझमे आती ।

शूर०— आती ही नही ?
—अच्छा तो फिर सुनो ।—जगतमे सर्वदा,
चार ओरसे तुमको घेरे शक्तियाँ,—
जिनमे कुछ प्रतिकूल और अनुकूल भी
अथवा हैं समकूल,—परस्पर वे सभी
सपेषण सघर्षण करती । बीचमे
बैठ रहो जो केन्द्र-सदृश तो डर नही ।
जहाँ केन्द्रसे डिगे वहाँ बस तुम गये—
घूम घूम कर मरो जगतके फेरमे ।

रानी—कैसे ?

शूर०— जैसे किसी पुरुषके दो स्त्रियाँ
हों। वे सौते सदा कलह करती रहें।
अलग खड़े हो देखा जो, तो डर नहीं।
अगर किसीका पक्ष लिया, या कुछ कहा,
तो निश्चय है घोर विपद्‌का सामना।—

रानी—हा धिक्। तुम इस सचल विश्वके बीच, यो
बैठ रहोगे निरुद्योग जड जीव से ?

शूर०—इस पर है विश्वास हृदयसे यह मुझे—
जो 'होनी' है वह अवश्य होगी, उसे
कोई भी अन्यथा न कर सकता प्रिये।

रानी—यह अच्छी है युक्ति।—कानमे डालकर
उँगली बैठे रहा निकम्मे भावसे—
निरुद्वेग हो—कार्यशून्य हो—

शूर०— होसके
जहाँ तलक। क्यो शक्ति खर्च करना वृथा ?
बैठे बैठे बल्कि शक्ति-सचय करो।

रानी—खर्च करोगे कभी नही, तो किस लिए
सचय करना ?

शूर०— प्रिये, सरल उतना नही
दर्शन-शास्त्र-विचार, सरल जितना उसे
तुम समझो। वह नारीके मस्तिष्कमे
शीघ्र न आता। थोड़ी शिक्षा चाहिए।

रानी—दर्शन-शास्त्र न जानूँ; उसको जानना
भी न चाहती।

[हथियारबंद पुरुषके वेषमें ताराका प्रवेश ।]

तारा— देखा है तुमने पिता ?

शूर०—क्या देखा है तारा ?

तारा— बच्चा बाघका ।

शूर०—लाया उसको कौन यहाँ ?

तारा— वनसे, उसे,
झाड़ीमें घुस बाघिनकी ही गोदसे,
लाये हैं हम छीन शिकारी सब यहाँ ।

शूर०—लाये हो तो बड़ी भूल की है । अभी
उसे खोजती बाघिन आवेगी यहाँ ।
लिखा शास्त्रमें, जिसका बच्चा छिन गया;
वह बाघिन है महाभयंकर; प्राणका
मोह छोड़कर, पागलसी होकर, फिरे
आसपासके जंगलके मैदानमें ।
आवेगी वह अभी, और या द्वार पर
खड़ी हुई ही होगी ।

तारा— आवे, डर नहीं ।
भुजबलसे मैं अभी पटक दूँगी उसे—
लूँगी उसकी जान ।

शूर०— मान लूँ किस तरह ।
बातें ऐसी हैं अनेक, कहना जिन्हें
बहुत सहज है—पर, करना है अति कठिन ।
युद्ध करोगी बाघिनसे ?

तारा— क्या कर सके
बाघिन मेरा ?
शूर०— यद्यपि बाघिनकी प्रकृति
सिर्फ सूँघना—सुना, किन्तु वह कार्यतः
करती उससे अधिक। लोग भी यों कहे—
बाघोंको नर-मांस बहुत प्यारा लगे
सब मांसोंसे।
तारा— पास रहूँगी मैं पिता—
तुमको कुछ डर नही। चलो, देखो उसे।
शूर०—क्या देखूँगा ? बच्चेका आकार भी
बाघोंका ही ऐसा होगा; सिर्फ वह
छोटा होगा।—कहता हूँ अनुमानसे।
एक बात मैं और कहूँ, तारा, सुनो—
तुम नारी हो। तुम्हे मर्दका वेष यह,
और मर्दके काम सोहते हैं नही।
रानी—क्यो न सोहते—जब मर्दोंने मर्दके
छोड़ दिये सब काम और मर्दानगी !—
जब मर्दोंके सभी काम, बर्त्ताव भी,
हुए स्त्रियोंके तुल्य,-एक लज्जा नहीं!—
जब सहते हैं मर्द पीठमे शत्रुकी
लातोंको—चुपचाप—झुकाये सिर खड़े !
शूर०—रानी ! यह वक्तृता मुझे अद्भुत लगी;
किन्तु क्रोध यह देख मुझे विस्मय हुआ
उससे बढ़कर। न्यायशास्त्र तुमने पढ़ा
नहीं; इसीसे शायद ऐसी बात है।

तारा—तो देखोगे नहीं पिताजी, बाघके
बच्चेको ?

रानी— मैं देखूँगा बेटी—चलो ।

(राना और ताराका प्रस्थान ।)

शूर०—विस्मयकर तारा-चरित्र दुर्ज्ञेय है ।

(प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—बिदौर ।

समय—तीसरा पहर ।

[वेश बदले हुए संग और तारा ।]

तारा—अच्छा, 'व्यूह' तोड़कर भीतर जानेकी अपेक्षा उससे बाहर निकल जाना कठिन है ।

संग—संसारमें सर्वत्र यही बात देख पड़ती है । तर्कमें युक्ति-जालका खण्डन करना कठिन नहीं है, लेकिन विजयी होकर निकल आना कठिन है । प्रेममें भी—

तारा—ना, मैं प्रेमकी बात सुनना नहीं चाहती । वह पागल-का सपना है ।—अच्छा मोहितसिंह, मेघनाद क्या सचमुच बादलोंकी आड़से युद्ध करता था ?

संग—वह रूपक है ।

तारा—रावणके दस सिर भी रूपक हैं ?

संग—रूपक तो है ही ।

तारा—तो रावण भी रूपक है ?

संग—रावण क्यों रूपक होने लगा ?

तारा—मैं कहती हूँ, हो भी तो सकता है। रामायणके कुछ अंशको जब रूपक मान लिया तब बाकी अंश क्यों नहीं रूपक हो सकता ?

संग—नहीं तारा ! यह युक्ति ठीक नहीं है। रामायण सत्य है। हाँ, उसमें जो कुछ मनुष्य-विश्वाससे परे है, वह या तो रूपक है, और या उसे काव्यालंकार मानना पड़ेगा।

तारा—क्यों मानना पड़ेगा ? या तो सब रखना चाहिए, या सब छोड़ देना चाहिए।

संग—बुद्ध, ईसा और महम्मदके संबंधमें अनेक झूठी बातें प्रसिद्ध हैं; इससे क्या यह मान लेना होगा कि वे थे ही नहीं ?

तारा—(सोचकर) मोहितसिंह ! तुमको कितनी जानकारी है। तुमसे कुछ बातचीत करनेसे कितनी ही बातें सीखी जा सकती हैं।

संग—(चुप रहता है)—

तारा—उस पर ऐसे नम्र हो। इसीसे पिताजी तुमको इतना प्यार करते हैं।

संग—केवल तुम्हारे पिताजी ही प्यार करते हैं ?

[रानीका प्रवेश।]

रानी—तारा ! तुम्हारे पिताजी तुमको बुला रहे हैं।

(ताराका प्रस्थान।)

रानी—मोहितसिंह, तुम मेवारके राजकुमार जयमलको पह-चानते हो ?

संग—पहचानता हूँ।

रानी—वही क्या मेवार-राज्यके होनहार राना हैं ?

संग—ऐसा ही सुना है।

रानी—वह क्या ताराके योग्य वर जान पडते हैं ?

संग—(चौंककर) क्या ?—नहीं, मैं नहीं जानती !—होंगे।

रानी—मोहितसिंह ! ताराके योग्य वर नहीं मिलता। मैं सियारके पल्ले शेरनीको नहीं बाँध सकती। उसके योग्य पात्र एक मेवारके युवराज ही हैं। तारा सारे राजपूतानेमें एक चित्तौरकी ही रानी होनेके योग्य है !—क्या कहते हो ?

संग—बेशक।

रानी—चित्तौरके रानाके बडे कुँअर संग्रामसिंह (संग) का तो कहीं पता नहीं है। मँझले कुँअर पृथ्वीराजको देशनिकालेका दण्ड मिला है। रहे जयमल, वही ताराके योग्य वर है।

संग—(स्वगत) यहाँ भी जयमल मेरा पटैत है ?

रानी—तुम उत्तर क्यों नहीं देते ? मोहितसिंह क्या सोच रहे हो ?

संग—आपने जो कहा, वही ठीक जान पड़ता है।

रानी—तुम शायद ताराको राजी कर सकोगे; वह ब्याह करनेको राजी हो नहीं होती। वह तुम्हें श्रद्धा करती है, जान पड़ता है, तुम्हारा कहा मान लेगी।

संग—(स्वगत) इतनी श्रद्धा करती है ! (प्रकट) जयमल ब्याह करनेको राजी हैं ?

रानी—वह बिलकुल राजी हैं । वह तारासे ब्याह करनेकी इच्छासे इसी सप्ताहमे यहाँ आनेवाले हैं ।—तुम चौंक क्यों पड़े ?

संग—नहीं तो ।

रानी—मैंने उनको न्योता दिया है । समझानेसे तारा भी राजी हो सकती है ।

(प्रस्थान ।)

संग—जयमलको यह रत्न मिलेगा अन्तको ?
वह गँवार समझेगा इसका मूल्य क्या !
या इस देवीका चरित्र पावक-सदृश
करदे जो उसके चरित्रको स्पर्शमे
शुद्ध स्वर्ण-सा ।—अच्छा है—बस, हा यही—
कर दूँगा यह दूर दुराशा चित्तसे ।
स्वेच्छासे साम्राज्य छोडकर, मै हुआ—
वनवासी—सपत्तिहीन, तारा मगर
राजसुता, रानी होनेके योग्य है !—
तारा श्रद्धा रखती है मुझ पर, मगर
अपने गुणसे, मुझमे कोइ गुण नही ।
उसका हो अभ्युदय, विघ्न बनकर यहाँ
नहीं रहूँगा । रानी हो मेवारकी
तारा गुनआगरी—और मैं !—मैं यहाँ
पड़कर घटना-स्रोत बीच तृण के सदृश
बह आया था,—नन्दनवन-उपकूलमें

लिपट रहा था दमभर—जो थी खिलरही
लता, उसीकी शाखासे—बस हो चुका—
फिर घटनाओंके प्रवाहमे बह चलूँ।

[तारा का प्रवेश।]

तारा—मोहित ! मोहित !

मग— आओ तारा—आगई ?

तारा—हाँ। कहती थी माता क्या तुमसे अभी ?
—कौन खबर थी ?

मग—(ताराका हाथ पकड़कर) तारा !—

तारा— क्या मोहित ! कहो—
यह क्या ! यह क्यो सहसा भर आया गला !—

मग—(हाथ छोड़कर) क्षमा करो।—कल दूर देशको जा रहा
हूँ मैं तारा।

तारा— यह क्या ? जाओगे कहाँ ?—
बहुत दूर ?

मग— मालूम नही—जिस ओरको
चल दूँ।

तारा—क्यों ? किसलिए ? कहो तो—

मग— "किसलिए ?"
—तारा तुम हो सुखी ! न पूछो "किसलिए ?"

तारा—यह कैसी है प्रहेलिका ?—(सन्देहसे) बोलो, तुम्हे
माताने तो कहा नहीं कुछ ?

मग— कुछ नहीं।

तारा—तो फिर ?

संग— मैं कह चुका, न पूछो "किसलिए?"
—एक निवेदन जाने से पहले करूँ।—
मानोगी प्रार्थना?

तारा— भली यह दिल्लगी!

संग—तारा, मैं दिल्लगी नहीं करता, सुनो—
व्याह करो तुम, यही तुम्हारी मा चहे।—
करता हूँ प्रार्थना उन्हीकी ओर से।

तारा—जादूगर! इस झोली मे कुछ और है?
उसे देखने को भी मैं तैयार हूँ।
—व्याह? करूँगी किससे?

संग— तुमने क्या सुना
है जयमलका नाम? वही मेवार के
राना होंगे।

तारा— होंगे, इससे क्या मुझे?
उनसे क्यो मै व्याह करूँ?

संग— मेवारकी
रानी होने योग्य तुम्ही हो शोभने!—
किसी नृपति के सिर पर ही उज्ज्वल, खरा
हीरा यह हो सके सुशोभित।

तारा— मानती—
श्रद्धा करती—तुम्हे बड़ा भाई समझ,—
पर, मोहित, यह बात मान सकती नही—
रानी-पद के लिए न मैं बलि दे सकूँ
अपना जीवन। तुच्छ राज्य मेवारका
क्या है—मारूँ लात, पुरन्दर की पुरी

अथवा 'अलका' की समृद्धि भी जो मिले ।—
मैं तारा इस तुच्छ द्रव्यके लोभसे
व्याह करूँगी ?

सग— जयमलको देखा कभी
है तुमने ?

तारा— मैं नहीं देखना चाहती,—
मोहित ! मोहितसिंह !—सत्य है, शस्त्रकी
विद्या तुमसे मैंने सीखी है; मगर
दिया नही अधिकार तुम्हे उपदेशके
देनेका इस बारेमे ।—मेरी खुशी—
व्याह करूँ या नही करूँ ।

(गर्वके साथ प्रस्थान ।)

सग—(टहलते हुए) तारा, अगर
तुम जानती कि युद्ध किया कैसा कठिन,
अपने जीसे, अबतक मैंने, इस समय
करनेको यह अति अप्रिय प्रस्ताव ?—या
मुझको क्या अधिकार तुम्हे उपदेश यह
देनेका—इस तरह—अयाचित भावसे ?
—(सोचकर) होता हूँ क्यो व्यथित हृदयमे ? यह किया
जो मैंने प्रस्ताव—अयाचित भावसे—
सो ताराको सुखी बनानेके लिए ।

[ताराका फिर प्रवेश ।]

तारा—मोहित ! मोहितसिंह ! क्षमा करना मुझे ।

सग—राजकुमारी यह क्यों ? क्या तुमने किया ?

तारा—बिगड उठी मैं वृथा—वचन रूखे कहे ।

सग—अनुचित ही क्या हुआ ?—भृत्यको झिडकियाँ
देनेका अधिकार मालिकोंको सदा-
से है ।

तारा— मुझको क्षमा करो । सामान्य हूँ—
केवल नारी—(सलज्जभावसे प्रस्थान ।)

सग— समझ गया । तारा, सभी
समझ गया वह देख कपोलोमे लसी
लज्जाकी लालिमा !—नहीं तारा —नहीं
होनेका यह । नही करूँगा मैं कभी
तुमको दु:खित । नही रहूँगा अब यहाँ
लिपट तुम्हारे चरणोसे !—होओ सुखी !
ग्रहण किया है व्रत जो स्वार्थत्यागका,
वह छोड़ूँगा नही । राज्य मेवारका
जैसे छोड़ा अनायास, वैसे स्वय
छोड़ूँगा यह अनुपम रमणी-रत्न भी ।
प्राण जायँ तो जायँ भले ।—अब मैं यहाँ
नही रहूँगा किसी तरह । यह है बहुत
दुर्बल मेरा हृदय, प्रलोभन भी बडा
भारी है । इसलिए, यहाँसे, बस अभी,
जाता हूँ ।—तारासे मिलनेके लिए
साहस होता नहीं । चलो—यो ही चलो
तारा ! तो अब चला ।—पुत्रि ! प्राणाधिके !
सुखी रहो—तुम सुखी रहो—कल्याण हो ।

(प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—सराय । परदेसियोंके ठहरनेकी जगह ।

समय—रात ।

[एक बनिया और दो परदेसी]

१ परदेसी—तो यह राज्य किसका है ?

बनिया—इस समय तो किसीका भी नहीं है । मीना लोग आरावलीके पहाड़ी स्थानोंसे नीचे उतरकर देशमे जो पाते हैं, लूट ले जाते हैं । राजपूतोंने इस देशको जीता जरूर है, लेकिन मुनाफेका गुड़ चींटे खाये जाते हैं ।

१ पर०—राजपूतोंका दबाव कोई क्यों नही मानता ?

बनिया—उनमे कोई मुखिया नही है । सभी अपनी हुकूमत चलाना चाहते हैं । उनको शक्तिको ठीक तौर से जमा करनेवाला एक आदमी चाहिए ।

१ पर०—राजपूतोंके सेना नही है ?

बनिया—सेना क्यो न होगी ? राजपूत-सेना सब नाड़ोलके किलेमे पड़ी हुई बेखटके खर्राटे ले रही है । उनके सामने ही मीना लोगोंका सरदार राजछत्र सिर पर लगाये राज्य कर रहा है, और वे मानों देखते ही नहीं हैं ।

२ पर०—(डरकर) अरे बापरे ! तब तो कल ही यहाँसे बोरिया-बँधना समेटकर 'नौ--दो-ग्यारह' हो जाना चाहिए ।

१ पर०—यह कहने की बात है !

[पृथ्वीराजका प्रवेश ।]

बनिया—यह कौन आया ? राजपूत देख पडता है ।

पृथ्वी०—तुम लोग कौन हो ?

१ पर०—हम और कौन है ? हम हैं हम !

पृथ्वी०—(दूसरे परदेसीसे) महाशय, यह क्या सराय है ?

२ पर०—(अनुकरण के स्वर में) हाँ भाई, सराय है !

पृथ्वी०—मालिक कहाँ हैं ?

१ पर०—क्यों ?

२ पर०—मान लो, मैं ही मालिक हूँ।

पृथ्वी०—यह दिल्लगी करनेका समय नही है। जल्द बताओ नहीं तो— (म्यानसे तलवार खीच लेना)

१ पर०—यह—यह कैसी बात है ?

२ पर०—एँ—इसकी तो कुछ चर्चा न थी।

बनिया—महाशय, जरा ठहरिए—धीरज धरिए। मालिक अभी आते हैं। राज्य अराजक अवश्य है, लेकिन ऐसा अराजक नहीं कि आप जब चाहे, हरएकका सिर काट कर फेक दे।

पृथ्वी०—नहीं महाशय, क्षमा कीजिएगा।

(तलवार को म्यान मे करना।)

बनिया—वह देखिए, सराय के मालिक आगये।

[मालिक का प्रवेश।]

बनिया—यही इस सरायके मालिक है।

१ पर०—(मालिकसे) महाशय ! यह अभी आपको खोज रहे थे।

मालिक—(पृथ्वी से) आप क्या चाहते हैं ?

२ पर०—अभी तो मेरा यह सिर काटना चाहते थे। जैसे लावारिस माल पाया है—और नहीं तो क्या !

पृथ्वी०—हम आज यहाँ रहेंगे।

मालिक—अच्छी बात है ! रहिए न।—कितने आदमी हैं ?

पृथ्वी०—मैं हूँ और मेरे साथ पाँच आदमी हैं।

मालिक—अच्छी बात है ! रहिए न। खाने-पीने की क्या तैयारी करूँ ?

पृथ्वी०—मेरे पास लेकिन एक कौड़ी भी नहीं है।

मालिक—कौड़ी भी नहीं है ! तब तो यह अच्छी बात नहीं। आपका चेहरा बिलकुल खराब नहीं है। लेकिन सिर्फ यह चेहरा देखकर ही इस शहर मे कोई खिलाने-पिलानेवाला देख नहीं पड़ता।

पृथ्वी०—यहाँ कोई बनिया-महाजन है ?

बनिया—क्यो ?

पृथ्वी०—यह हीरेकी अँगूठी बेचूँगा।

बनिया—देखूँ (देखकर, चौंककर) समझ गया, आप क्या—

पृथ्वी०—(गर्वके साथ) मैं पृथ्वीराज हूँ।—नाड़ोलमे रहने आया हूँ।

बनिया—अच्छी बात है ! नाडोल आज सनाथ हुआ ! (सरायके मालिक से) इन लोगोंके लिए सबसे अच्छे कमरे रहनेको दो। सबसे अच्छे भोजनका प्रबंध करो। दाम मै दूँगा।

मालिक—(विस्मयसे) अच्छा ! (पृथ्वीसे) आइए महाशय, आपके साथी क्या बाहर हैं ?

पृथ्वी०—जी हाँ।

मालिक—चलिए। (दोनोंका प्रस्थान।)

बनिया—यह मेवार के राजकुमार पृथ्वीराज है।

२ पर०—(चौंककर) कहते क्या हो ? यह !!!

१ पर०—इसीसे इतना रूखा मिजाज है।

बनिया—इनका-जैसा वीर आजतक राजपूतानेमे पैदा नहीं हुआ। इन्होंने एक बार अकेले एक सौसे अधिक मुसलमानोंसे लड़कर विजय प्राप्त की है।

१ पर०—(आँखे फाड़कर) हाँ !!!

२ पर०—यह तुम्हें पहले कहना चाहिए था। चलो चलो, देख तो लें। जरा अच्छी तरह देखकर पहचान लेना चाहिए। अच्छी तरह देखा नहीं।

१ पर०—चलो चलो। (दोनों का प्रस्थान।)

बनिया—इनके द्वारा कार्य सिद्ध होगा। नाड़ोल फिर राजपूतों-का होगा। (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—विहार।

समय—तीसरा पहर।

[वृक्षके नीचे घोड़ेसे उतरकर खड़े हुए जयमल
और वृक्षके सहारे खड़ी हुई तारा।]

तारा—चलो, सुन लिया ! वही एक ही धुन लगी,—
'तुम्हे चाहता', 'तुम्हे चाहता' -एक सौ
दफे सुना। यह वाणी जैसे सड गई,
घृणा हुई है इससे। इसको मैं न अब
सुना चाहती।

जय०— सुनना ही होगा तुम्हे।—
तारा ! तुमको चाहूँ मैं जी-जानसे !

तारा—चाहे चाहो तुम, चाहे चाहो नहीं;
किसका इससे कुछ बनता या बिगड़ता ?

जय०—"किसका इससे कुछ बनता या बिगड़ता !"
तारा ! यह क्या सचमुच ही तुम कह रहीं ?
सच है क्या, मैं चाहूँ या चाहूँ नहीं ?

इसकी परवा तुम्हे नही ?—इससे बने-
बिगड़े कुछ भी नही तुम्हारा ?

तारा— हाँ, यही
बात सत्य है। अविश्वासका क्या तुम्हे
कोई कारण देख पड़े ? सौ बार मैं
यही कह चुकी, फिर कहती हूँ, एक सौ
एक बार—तुम चाहो या चाहो नही,
ताराका कुछ इसमे बनता-बिगड़ता
नही। सुन लिया ?—जाओ।

जय०— हा, कैसी कठिन
नारी हो ?—पाषाण-हृदय!—किसने तुम्हे
रमणीका यह रम्य रूप देकर रचा ?

तारा—विधिका भ्रम! क्या किया जाय!

जय०— तुम चाहती
आप नही,—विश्वास कर सकूँ यह, मगर
क्या तुम सच्ची चाह समझती भी नही ?
कहते किसको प्रेम—जानती भी नही ?

तारा—प्रेम!—कहाँ, सो मुझे सिखाया ही नही
कभी किसीने। अस्त्र-शस्त्र-विद्या, गणित,
शास्त्र और विज्ञान—यही सीखा, कभी
प्रेम न सीखा मैंने। शायद प्रेम है
धनियोका सभोग। सोहता वह नही
घरसे खेदे गये, दीन, दारिद्र्यसे
पीड़ित, परवश, हीन, एक सामन्त की
कन्या ताराको।—न चाहकी चाह है।

जीसे की है यही प्रतिज्ञा— 'जब तलक
जन्मभूमिका कर न सकूँ उद्धार मैं
तबतक कोई और बात सोचूँ नही ।"
—यही प्रतिज्ञा! यही चाह!

जय०— तो किस तरह
हो सकता उद्धार तुम्हारी प्रेयसी
मातृभूमिका?

तारा— नही जानती यह कुअँर ।
तो भी चिन्ता यही एक रहती सदा
मनमे । मैं हूँ नारी, जानूँ शस्त्रकी
विद्या; लेकिन कहो, अकेली क्या करूँ?—
क्या कर सकती? हाय! करेगी क्या निबल
नारी, जब निश्चिन्त हुए सब मर्द यों
अपना जीवन बिता रहे हैं अतिघृणित
निन्दित, नीच विलास-वासना-दास हो ।
नही जानती, कितने दिनमे, किस तरह,
किस उपायसे, जन्मभूमि स्वाधीनता
पावेगी, तो भी मैंने यह प्रण किया,—
यह व्रत धारण किया,—न मेरी साधना
जबतक होगी सिद्ध, न पूरी कामना
होगी, तबतक ब्याह करूँगी मैं नही ।

जय०—तारा, क्या है यही रुकावट ब्याहमे?

तारा—हाँ, बाधा है यही । उच्च जो साधना,
उसके बाँधे हाथ-पैर यह ब्याह ही ।
प्रेम विलासी लोगोंका ही स्वप्न है;

साधकजनका नही । पडा जो सो रहा,
वशीध्वनिसे नहो जगे, उसके लिए
तुरहीका ही नाद चाहिए ।—बस कुअँर,
लौट जाइए । जन्मभूमि जबतक दुखी
पराधीन है, तबतक मुझको प्रेमकी
बाते करनेको छुट्टी ही है नही ।

जय०—अगर तुम्हारी मातृभूमिका कष्ट मै
हरूँ—करूँ उद्धार ?

तारा— करूँगी ब्याह तो ।—
तुम्हे चाहती या न चाहती हूँ, मगर
ब्याह करूँगी । (सोचकर)
सच कहता हूँ मै कुअँर,
ब्याह करूँगी । नई जवानी, रूप यह,
स्त्रीका रत्न सतीत्व—और जो कुछ स्त्रियाँ
प्यारा समझे, सब चरणोमे आपके
बलि दूँगी,—जिस तरह चुराकर खाद्यको
भूखा छोड़े धर्म; बहाती जिस तरह
माता गगामे अपनी सन्तानको ❀ ।

जय०—अच्छा ! तारा, मगर ब्याहके बाद तुम
प्रेम करोगी मुझसे ?

तारा— यह जानूँ नही;
तो भी अपना रूप, जवानी, यह सभी

❀ बंगालमे पहले यह प्रथा प्रचलित थी । पुत्र के जीनेके लिए मातायें गंगाको बलि देना मानती थी और वैसा ही करती भी थीं ।

बेचूँगी बेउजर तुम्हारे हाथ मैं।—
होगी वह सम्पत्ति तुम्हारी।

जय०— तो यही
होगा।

तारा— बस जाइए। प्रतिज्ञा यह, कुअँर
जबतक पूरी न हो, न तबतक सामने
मेरे आना! आओगे तो फिर नहीं
अच्छा होगा। समझे?

जय०— समझा।

तारा— जाइए। (प्रस्थान।)

जय०—तारा—तारा, हाय, विमुख जितनी बनो
उतनी ही लालसा बढ़े—जैसे रुका
जल-प्रवाह रह रहकर करता ज़ोर है।
देखी है मैंने अनेक नारी, उन्हे
बातोंसे या धन देकर वश कर लिया।
किन्तु न ऐसी रमणी देखी है कभी।—
आगे ज्यादह बढ़ो अगर तो जल उठे
बिजली सी उसकी आँखोंमे, क्रोधसे
ओंठ फड़कने लगते हैं, मै ख़ौफसे
हट जाता हूँ पीछे।—ऐसा तेज है!
पर उसकी हर बात, अदा, या देखना—
काम-अग्निका ईंधन है।—कैसी—अहो—
अद्भुत है यह नारी! खेदे दूरको
जितना, उतना और खीचती पासको। (प्रस्थान।)

छठा दृश्य ।

स्थान—तमसाके अन्तःपुर ।

समय—रात ।

[सारंगदेव और तमसा ।]

तमसा—समझ गये ?

सारंग०—समझ गया

तमसा—मालवेके नवाबने आकर सहायता देना स्वीकार कर लिया है । तुम नवाबसे कहना कि वह अगर एक दफा खुद आकर मेरे स्वामीको समझावे तो और अच्छा हो ।

सारंग०—मगर सूर्यमलको समझाना एक तरहसे असंभव है । उनकी दृढ़ कर्त्तव्य-परायणता, प्रभुभक्ति, भाईका स्नेह—

तमसा—उनके चरित्रको तुम्हारी अपेक्षा मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ । वह कर्त्तव्यपरायण, प्रभुभक्त और स्नेहशील अवश्य हैं लेकिन उनकी बुद्धि पानीकी तरह पतली है । कभी इधर ढुलक पड़ते हैं, कभी उधर ।

सारंग०—तो फिर उनके राजी होने पर भी उनका विश्वास क्या है ?

तमसा—इसके लिए चिन्ता नहीं है । वह अगर एकबार प्रतिज्ञा कर लेंगे, तो मैं जानती हूँ, प्राण देकर भी उस प्रतिज्ञाका पालन करेंगे । तो भी प्रतिज्ञापत्रमें देहके रुधिरसे हस्ताक्षर करा-लेनेके लिए नवाबसे कह देना । क्या जानें, जहाँ सत्यके विरुद्ध कर्त्तव्यपरायणता है, वहाँ सत्यका नाश होना बिलकुल ही असंभव नहीं ।

सारंग०—अच्छी बात है !—मगर जयकी आशा बहुत ही कम है। केवल यही भरोसा है कि राना बूढ़े हैं और सारी सेना सूर्य-मलकी मुट्ठीमें है। नहीं तो—

तमसा—कुछ डर नहीं। मगर यह सुयोग बीत जाने पर फिर नहीं मिल सकता।—समझ गये ?

सारंग०—समझ गया।

तमसा—सब बातें याद रहेंगी ?

सारंग०—रहेंगी।

तमसा—अच्छा तो जा सकते हो। समझे सारंग, याद रखना, (सारंगके कन्धे पर हाथ रखकर स्नेहसे) तुम्हारे ही लिए इतना कर रही हूँ।

सारंग० (सिर झुकाये हुए) आप मेरे लिए इतना क्यों कर रही हैं ?

तमसा—क्यों कर रही हूँ ? तुम्हारे लिए नहीं करूँगी सारंग, तो और किसके लिए करूँगी ?—सारंग ! सारंग नहीं जानता, तू मेरा कौन है ?—ना, अभी नहीं। काम पूरा हो जाने पर कहूँगी। तुम्हें मेवारके सिंहासन पर बिठाकर तब कहूँगी।—वह बात हृदयके मर्मस्थलकी—बड़ी गहरी—बड़ी गुप्त है।—इस समय जाओ। (वेगसे प्रस्थान।)

सारंग०—अद्भुत बात है ! मैं जानता हूँ, यह मेरी भलाई चाहती हैं। लेकिन क्यों ? फिर यहाँ तक ! बीचबीचमें घोर सन्देह होता है।—यहाँ तक ! (चिन्तित भावसे प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—ताराके सोनेकी कोठरी ।

समय—रात ।

[अकेला जयमल ।]

जय०—छद्मवेषसे, छिपकर, आधीरातको
आया हूँ ताराके शयनागारमे ।
नही जानता, ताराकी क्या राय है—
तो भी आया । कैसा दुस्साहस किया
अन्धभावसे ! किस आशासे मै यहाँ
छिपकर आया ताराके एकान्त इस
शयनभवनमे ? अबतक पूरी कर सका
नही प्रतिज्ञा अपनी । सेना है कहाँ ?
टोडाका उद्धार करूँ मै किस तरह ?
करनेसे अनुरोध, पिताने स्पष्ट ही
लिख भेजा है—"जो कि स्वय निश्चिन्त हो
सोता, उसका काम करेगा और क्यो ?"
दिखलाया ताराको मैने रूढ वह
लेख पिताका ! तब उसने कुछ गर्वसे
कहा—"बहुत अच्छा है ! तो फिर जाइए ।
अब आना मत !"—अब जो देखेगी यहाँ
तो तारा क्या मुझे कहेगी ?—देखकर
मुँह फेरेगी ? झिड़की देगी ? या मुझे
दूर करेगी—दुतकारेगी ? हाँ—यही
सभव है !—दृढ़ भाव दिखाकर स्पष्ट ही

उसने है कह दिया, न चाहे वह मुझे।
—नही नही, वह मुझे चाहती है बहुत।
स्त्री-चरित्रको कौन समझ सकता भला?
स्त्रीका हृदय 'रहस्य' रहेगा सर्वदा।
कहती कुछ हैं, करती कुछ है नारियाँ।
"नही चाहती" अगर कहे, तो जान लो,
तुम्हे चाहती है सलज्ज सद्भावसे।—
हा तारा! यह तेरा जीवन छल-भरा
कैसा एक अपूर्व कामका जाल है!
मीठा मिथ्यावाद मुझे मोहित करे!
दोनो हाथ पसार, बुलाकर, फिर अहो
तुम मायाकी मरीचिका सी दूर हो
हट जाती हो।—जो होना हो, हो। बढ़ा—
हुआ अग्रसर जब इतना, तब अन्त तक
विना परीक्षा किये न जाऊँगा कभी!
चाहे चाहे और न चाहे, किन्तु मैं
उसकी आशा कभी छोड़नेका नही।
छलसे, बलसे, या कौशलसे मैं उसे
वश कर लूँगा।—तब तक रहना चाहिए
छिप करके बस इसी द्वारकी आड़मे,
वह आती है तारा दासीको लिये,
बाते करती उससे।—अब मैं छिप रहूँ। (छिप जाता

[तारा और दासीका प्रवेश।]

तारा—माताकी आज्ञा है! श्यामा! तो कहो
मातासे—जो उनकी आज्ञा है यही,

तो जयमलसे ब्याह करूँगी मैं। मगर
जयमलको मैं नही चाहता,—कह दिया
कई बार यह उनसे मैंने स्पष्ट ही।—
कह देना फिर यहाे।

दासी— कुमाराजी, उन्हे
चाहोगी—कुछ समय बीतने दो।

तारा— नही—
कभी नही। वह दुष्ट, नीच, भय-सकुचित,
क्षुद्र हृदयका है। चाहूँगी मैं उसे?
कुत्तेको या गीदडको भी चाहना
उससे अच्छा।

दासी— राजपुत्र है वह।

तारा—
तो भी उससे घृणा।

दासी— वही मेवारके
राना होंगे।

तारा— तो जानो मेवारके
दिन आये है बुर।—करूँ उससे घृणा
तो भी—

दासी— निश्चय यही?

तारा— यही निश्चय किया
जा, जननीसे कह देना बस तू यही।—
दिया बुझादे।—अच्छा। जा, आराम कर।

(दिया बुझाकर दासीका प्रस्थान)

तारा—(द्वार बंद करके खिड़कीके पास जाकर आकाशकी ओर देखकर)

सन्नाटा छारहा ! रात बीती बहुत !
थकी हुई हूँ, अंग शिथिल सब हो रहे ।
यह वैशाखी हवा ज़ोरसे चल रही ।
हुआ नींदका राज्य; न कोई शब्द है ।
अन्धकारमें डूबे हैं सब पासके
जंगल, बस्ती, गाँव । नील आकाशमें
बादलका कोई भी टुकड़ा है नहीं ।
तारा, ग्रह, नक्षत्र, यही केवल वहाँ
बेशुमार हैं चमक रहे ।—सोऊँ । (सोना) नहीं,
नींद नहीं आती आँखोंमें ।—हर घड़ी
माताका आक्षेप, पिताकी लाञ्छना
सोचा करती । माता क्यों करती रहे
तिरस्कार सर्वदा पिताका ? हा उन्हें
ज्ञान न पड़ता, वह उनकी लाञ्छना
कितनी लगती बुरी पिताको । सो रहूँ—
नींद आरही अब तो । (सो जाना)

जय०— तारा सो गई ।
अबतक छिपकर बहुत आत्मनिन्दा सुनी ।
यद्यपि है वह सत्य, तिक्त तो भी बड़ी ।
बदला लूँगा इसका ! देखूँ, बंद है
दरवाज़ा या नहीं । (द्वार देखकर) बंद है ।
(पास जाकर देखना)
(दाँत पीसकर)— इस समय
बेशक है सुन्दरी !—सलोतर सुन्दरी ?

कैसी आँखे हैं विशाल ! कैसो भवे !
आहा ! कैसे केश घने चिकने बडे
तकिये पर है पडे ! रग कैसा, खरा
सोना जैसे चमक रहा है ! देह भी—
कैसा चौड़ा है, बलिष्ठ है, और दृढ
होने पर भी कोमल है । रक्खा हुआ
एक हाथ पर गाल; दूसरा हाथ भी
कैसा सीनेके उभार पर है पडा !
कैसे फड़क सरस अधर लाली लिये—
जैसे चुम्बन माँग रहे—पाते नही—
इस लज्जासे लाल हो उठे । साँसके
लेनेमे वक्ष:स्थल स्पन्दित हो रहा—
आलिगन माँगता अग्रसर हो प्रथम,
फिर हताश हो लौटे—लबो साँस ले ।

तारा—(चौककर उठकर) कौन !

जय०— प्रिये, इन चरणोहीका दास मैं
जयमल हूँ ।

तारा—(खड़ होकर) तुम ! यहाँ ! रातमे !

जय०— मैं—प्रिये—

तारा—(दृढ स्वर मे) समझी, जाओ !

जय०— मै जाऊँगा यो नहीं—
पूर्ण मनोरथ हुए बिना—तारा ! (आगे बढता है)

तारा— अलग !—
नोच ! भीरु ! कापुरुष !—तुम्हें लज्जा नहीं ?
छिपकर, जैसे चोर, रातको, तुम यहाँ

कन्याके एकान्त शयनगृहमें घुसे ?
ऐसे हो अश्लील ?

जय०— ज्ञान जाता रहा
तारा ! (पैरों पर गिरना)

तारा— जो तुम यह अपनी घृणित
गुप्त उपस्थिति और बढ़ाओगे यहाँ
तो जावेंगे प्राण ।

जय०—(उठकर) क्या करोगी भला ?
बन्द कर लिया द्वार प्रथम मैंने प्रिये !

तारा—बन्द कर लिया द्वार ? इसीसे सोचते
हो मनमें —तुम यहाँ निरापद हो ? भला !
बड़े साहसी तुम हो। तारा एक ही—
कुअँर !—सैकड़ो जयमलको इस पैरकी
ठोकरसे मल सके चींटियोंके सदृश ।
—मूढ़ ! अगर हो प्राणोंकी ममता तुम्हें
तो जाओ—बस, चल दो ।

जय०— पूरी कामना
अपनी करके जाऊँगा—ऐसे नहीं ।
(कोमल स्वरसे)
अबकी तो सुंदरी, न चकमा चल सके—
जासकती यों नहीं—(हाथ पकड़ना)

तारा—(हाथ छुड़ाकर और पलगके नीचेसे तलवार निकालकर)
अधम ! इतना तुम्हें
साहस ! इतनी है मजाल ! मुझको छुओ !—
तुम क्षत्रिय हो ? बापाकी सन्तान हो ?

कहती हूँ, जो तुम्हें प्राणका मोह हो
तो जाओ बस । नहीं मरोगे ।

जय०—(भयंक भावमें भागनेके लिए उद्यत होकर)
शान्त हो
नारी ! तेरी खिची हुई तरवारसे—
निकल रही ये आँखोंसे चिनगारियाँ—
अधिक भयंकर मुझे जान पड़तीं ! करो
क्रोध शान्त । तारा—मैं जाता हूँ अभी ।
(द्वार खोलना)

[लालटेन और पिस्तौल लिये हुए शूरतानका प्रवेश ।]

शूर०—घोर रातके समय कौन है यह घुसा
मेरी कन्याके इस शयनागारमे ?

तारा—जयमल हैं—युवराज राज्य मेवारके ।

जय०—छोड़ो मेरी राह—जारहा हूँ—

शूर०— कहाँ
जाओगे ? कर कलुषित कन्यागेहको—
जाओगे अब कहाँ ? सत्य है, मैं पतित
हूँ, दरिद्र हूँ, और अभागी हूँ, मगर
तो भी राजा हूँ, तारा है नृपसुता ।—
किसकी पडी मजाल, करे अपमान जो
उसका ?—वह हो राजपुत्र मेवारका—
उसे कलंकित करके घरको लौटकर
जासकता है कभी न जीता जागता ।

जय०—(काँपती हुई आवाजसे)
क्षमा करो ।

शूर०— मैं क्षमा नहीं सीखा।

तारा— पिता,

भीत, भागते और निहत्थे व्यक्तिको
छोड़ दीजिए। क्षात्रधर्म यह है नहीं।

शूर०—घृणित चोर सा जो घुसता है रातको
नागरिकोंके घरमें, वह क्षत्रिय नहीं।
क्षात्रधर्मका पालन उसके साथमे
करना ही चाहिए नहीं। वह चोर है।
दण्ड चोरको मैं दूँगा।—जयमल! खडा
हो आगे।

जय०—(घुटने टककर) मैं कभी न आऊँगा यहाँ—
क्षमा करो।

शूर०— चुप चोर! खडा हो सामने।
(गोली मार देना)

तीसरा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—रानाका महल ।

समय—प्रातःकाल ।

[राना और सूर्यमल ।]

राय०—जयमलकी अपमृत्यु हुई । भाई, सुना
समाचार यह पहले ही मैंने ।

सूर्य०— प्रभो,
मुझसे अबतक कहा नहीं यह आपने ?

राय०—कहा नहीं, क्या कहता ? कहनेकी नहीं
वह कलंककी बात । सुना जिस दम उसे—
वैसे, जैसे लाल रंग हो शर्मसे
आसमान फट पड़ा; किसीने ढाल दी
ज्यों चितौरके राजवंश पर कालिमा ।—
बापाकी सन्तान अधम ऐसी हुई !
हाय रायमलका कुमार !!! इतना अधिक
लंपट–कायर—नीच !!! अहो धिक्कार है—

(मुँह हाथोंसे ढकना ।)

सूर्य०—हा जयमल !

राय०— मत कहो "हाय जयमल !"—उसे
उस कुकर्मका दण्ड ठीक ही मिल गया ।

सूर्य०—क्यों राजन ?

राय०— जो दुष्ट कुमारीको छुए—

विमल बिछौना उसका करना चाहता

दूषित, नीचा हाय दिखावे वंशके

गौरवको, दुर्भाग्य पतितको कर सके

लाञ्छित निःसंकोच; दण्ड उसके लिए

एक मृत्यु है—यही दण्ड बस ठीक है।

शूरतानने वही दण्ड उसको दिया।—

दुःख यही रह गया—न उसको दे सका

मृत्युदण्ड मैं अपने हाथोंमे यहाँ।

सूर्य०—बदला लेंगे नहीं आप ?

राय०— बदला ? कहा

तुमने भी यह ख़ूब। उचित है क्या यही ?

बदला लूँगा ? बदला लूँगा बस यहो—

लाञ्छित, दुःखित और पराजित शत्रुसे—

शूरतानको एक खण्ड निज राज्यका

दूँगा। है प्रतिकार यही सन्तानके

दुराचारका। पिता जहाँतक कर सके—

जो कुछ है कर्त्तव्य—करूँगा मैं।—अभी

मन्त्रीको मन्त्रणाभवनमें भेज दो।—

जाओ भाई ! (प्रस्थान)

सूर्य०— तुम उदार हो, उच्च हो।

किन्तु—किन्तु—तुम इतने, ऐसे हो—कभी

मैंने अपने मनमे सोचा भी नहीं।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—मीनों का राज्य ।

समय— तत्काल ।

[पृथ्वीराज और बनिया ।]

पृथ्वी०—स्थापित यह नव राज्य किया मैंने यहाँ
निजभुजबलसे, और दिखाया बापको—
इस शरीरमे, इस शोणितमे, वंशकी
मर्यादाके सिवा और कुछ सार भी
है। असभ्य इन मीनोके इस राज्यको
इन हाथोंके बलसे मुट्ठीमे किया।
निर्भय होकर राजपूत नाडोलमे
आज घूमते फिरते है।

बनिया— प्रिय मित्र तुम
सच कहते हो।

पृथ्वी०— पाँच सिपाही साथमे
लेकर आया था, देखो, इस राज्यमे।
पर अब पाँच हजार वीर सरदार ये
मेरी आज्ञाके अधीन है।

बनिया—(स्वगत) हाय यह
बहादुरी जो नम्र कहीं होती!—अहो,
इस पृथ्वी पर सभी गुणोका एकमे
समावेश अति दुर्लभ है।

[दो चोपदारोंका प्रवेश]

पृथ्वी०— क्या है खबर—
चोपदार ?

चोप०— सरकार, दूत मेवारसे
समाचार कुछ लाया है यहाँ ।—
क्या आज्ञा है उसे ?

पृथ्वी०— दूत—मेवारसे ?—
उसको हाजिर करो ।

(चोपदार का प्रस्थान

पृथ्वी०— दूत—मेवारसे ?—
क्या कहते हो मित्र ? दूत मेवारसे
क्या लाया है खबर ?

बनिया— समझ पड़ता नही ।

[दूतका प्रवेश करके प्रणाम करना]

पृथ्वी०—तुम आये हो दूत, राज्य-मेवारसे ?
दूत—मै आया हूँ महाराज ! मेवार से ।
पृथ्वी०—क्या लाये हो खबर ? —कुशलसे हैं पिता ?
दूत—चिट्ठी है यह—हाल कहूँगी सब यही !
पृथ्वी०—दो चिट्ठी । (चिट्ठी लेकर पढकर)

आश्चर्य ! बड़ा आश्चर्य है !

बनिया— (कौतूहलके साथ)
प्रियवर, क्या है खबर ? उसे क्या छु
सकता हूँ ?

पृथ्वी०— प्रिय मित्र ! बुलाया है मुझे
रानाने मेवार-राज्यमे शीघ्र ही ।

बनिया—सहसा !—कारण ?

पृथ्वी०— कारण ? कारण है यही—

भाई जयमल मरा।

बनिया— कौन—जयमल—मरे ?

यों सहसा ? किस तरह ?—

पृथ्वी०—(बनिएसे) पढो इस पत्रको।

(पत्र देकर दूतसे)

जाओ तबतक दूत, करो विश्राम, मैं

तुमको इसका उत्तर दूँगा शामको।

दूत—जो आज्ञा। (प्रणाम करके प्रस्थान)

बनिया— यह तो विचित्र ही बात है !—

तो तुम अब युवराज हुए मेवारके ?

पृथ्वी०—हाँ मैं हूँ युवराज। मित्र, तो भी न मैं

चाहूँ वह सम्पत्ति ! बाहुबलसे स्वयं

नया राज्य गढ़ लिया।—कमी है क्या मुझे ?

बनिया—नहीं लौटकर जाओगे मेवारको ?

पृथ्वी०—कभी नहीं।

बनिया— यह प्रेम-कहानी तो बड़ी

ही विचित्र है ? राजसुताने प्रण किया

यह अति अद्भुत—"जो कोई क्षत्रिय बली

उसकी प्यारी मातृभूमिको लाञ्छना

मेटेगा—उद्धार करेगा—वह उसे

वरण करेगी।"—ऐसा प्रण तो, बन्धुवर !—

कभी सुना हो नहीं, कहीं कलिकालमें

किया किसी कन्याने।

पृथ्वी०— क्या तुम जानते
हो, कैसी है मित्र, कामिनी वह?—
बनिया— प्रभो,
उपमा उसकी नही।
पृथ्वी०— नाम क्या है?
बनिया— उसे
तारा कहते हैं! वह ताराके तुल्य ही
सभी स्त्रियोंके ऊपर है ज्योतिर्मयी।
पृथ्वी०—अच्छा! मै ही विफल प्रतिज्ञा अनुजकी
पूर्ण करूँगा—टोड़ाके उद्धार से।
बनिया—समझा। तुम जो मित्र करोगे काम यह,
तो फैलेगी कीर्ति विश्वमे, साथ ही
पाओगे सुन्दरी-रत्न—जिसकी कही
तुलना होगी नही।
[नौकरका प्रवेश]
नौकर— दोपहर हो गई—
महाराज—
पृथ्वी०— तो चलो. नहाना चाहिए।
(फिरकर) आना परसों मित्र।
बनिया— बहुत अच्छा प्रभो।
(एक तरफसे नौकर और पृथ्वीराज और दूसरी तरफसे बनिया जाता है)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—सिगढ़के राजाका खास बैठकखाना ।

समय—रात ।

[मुसाहब और नाचनेवालियाँ ।]

१ मुसा०—राजा कहाँ है जी ? अभीतक बेटाने मुँह नहीं दिखाया ।

२ मुसा०—(मद्यपानके नशेमें भर्राई हुई आवाजमें) वह साला किसी जगह मोहरीमें औंधे-मुँह पड़ा होगा, और क्या !

३ मुसा०—साला कब कहाँ रहता है, कोई इसका ठीक पता नहीं !

४ मुसा०—लेकिन कब कहाँ नहीं रहता, इसका खूब ठीक पता है !

१ मुसा०—कहाँ जी ?

४ मुसा०—अपने महलमें । महीने भरमें सिर्फ एकदिन वह उधर जाता है ।

३ मुसा०—उफ़, बेचारी रानीको कैसा कष्ट है !–चित्तौरके रानाकी बेटी है !

४ मुसा०—आहा, बड़ी अच्छी औरत है ! देखा तो था उस दिन ।

१ मुसा०—आहा !

२ मुसा०—उसके लिए तो तुम लोगोंका शोक-सागर ही उमड़ पड़ा ! (नाचनेवालियोंसे) गाओ गाओ—तुम लोग गाओ—दिलबहलावके समय दिल बहलाओ ।

नाचनेवालियोंका गीत।

धुन कव्वाली।

भीतर हसत यामिनी मुखरा सुखमों दीपक-माल सवारे ;
आसू--ओस नयन भरि बाहर रोवत निशा विषादहि धारे।
भीतर प्रभा चहूँदिशि छिटका करत फटिक-दर्पन उजियारे ;
बाहर परो असीम अंधेरो बन, मैदान घिरि आंधियारे।
रहि रहि भीतर नृत्य-गीतका लहरें उठि अनंद पसारे ;
बाहर दूर निठुर जाड़की वायु कठोर चले जनु आरे।
गर्वित कुलटा सी गुलाबकी माला यह झूमत जब द्वारे
हरसिंगार तब अंधियारे मह झरत भूमि पर चुप मन मारे।

१ मुसा०—वाहवाह, यह गीत तो हमारे राजा-रानीकी अवस्थाकी अत्यन्त सुन्दर टीका है।

२ मुसा०—एकदम मल्लिनाथकी टीका है!

३ मुसा०- क्या! क्या कहा जी? "झरत भूमि पर चुप मन मारे"--क्यों?

४ मुसा०—वाह, बहुत सुन्दर है! बड़ा ही सुन्दर है!

२ मुसा०--अरे रहने दो--ऐसी जगह पर तुम्हारा यह वेद-व्यासी ढंग अच्छा नहीं लगता!—एक अच्छा सा गाना गाओ!

१ मुसा०—यह गाना समझा नहीं? साला कुलांगार है?

२ मुसा०—और तू अपने बापका बड़ा भारी सपूत है! एक-दम अपने कुलका मुँह उजियाला किये बैठा है साले!

३ मुसा०—अरे धोतीसे बाहर क्यों हुए जाते हो?

२ मुसा०—देखो तो! संगत तो ऐसी है, मुसाहबी तो करते हैं एक 'बछियाके ताऊ' राजाकी, और उड़ा रहे हैं भगवद्गी-

ताका तीसरा अध्याय ! स्वीकार करता हूँ, हम लोग चापर हो गये हैं ! मगर ये लोग चापर होनेकी राहमे चलेंगे भी और यह दिखावेंगे कि जैसे अभी उस दिन ऋष्यशृंग ऋ पाठशालासे पढ़कर निकले है—कुछ जानते ही नहीं।—मारो झाड़ू मारो।

१ मुसा०—चूक हुई बाबा ! अब मै घूरेपर मोती नहीं बिखराऊँगा।

२ मुसा०—अजी राजा आरहा है,—राजा आरहा है।

(पाभूरावक प्रवेश। सबका पाभूरावको प्रणाम करना।)

पाभू०—(नाचनेवालियोंकी तरफ उगली उठाकर) ये यहाँ क्यों आई ? निकलो हरामजादियो। निकलो !

सब मुसा०—निकलो निकलो। (नाचनेवालियोंका प्रस्थान)

पाभू०—(दमभर टहलकर सुनो, तुम सब सुनो।

सब मुसा०—सुनो सुनो।

पाभू०—पृथ्वीराजने किया क्या है ? जिसके गुण गा गाकर मेरे राज्यमे सबने एक बाजार लगानेकी तैयारी कर दी है, पृथ्वीराजने किया क्या है ?

सब मुसा०—और क्या ! किया क्या है राजासाहब !

पाभू०—तो कहूँ ? कहूँ ? कहूँ ?

सब मुसा०—हाँ, कहिए, कहिए, कहिए।

पाभू०—ना, कहूँगा नही।

सब मुसा०—ना, कहनेकी कुछ जरूरत नहीं, हम लोग समझ गये।

पाभू०—समझ गये कैसे ? क्या समझे—कहो तो।

सब मुसा०—(एक दूसरेसे) हाँ कहो तो, क्या समझे, कहो तो ।

पाभू०—कुछ भी नही समझ सके ।

सब मुसा०—हाँ राजासाहब, हमने बहुत सोच विचारकर देखा तो समझ पड़ा कि कोई कुछ भी नही समझ सका ।

पाभू०—तुम लोग कुछ नहीं समझ सके, सो तो मैंने पहले ही जान लिया था । अच्छा कहता हूँ, सुनो ।

सब मुसा०—सुनो सुनो, राजासाहब कहते है ।

पाभू०—सुनो वह पृथ्वीराज मेरा साला है—उसके बड़े भाग्य हैं कि वह मेरा साला है ।

२ मुसा०—एकदम बहुत बड़े भाग्य है । महाराजका साला होना बहुतोके बहनोई होनेके बराबर है ।

पाभू०—उसने कुछ जगलियोको युद्धमे हरा दिया है (एक मुसाहबसे) क्या कहते हो जी ।

१ मुसा०—और क्या, मगर—

पाभू०—चुप रहो ।

सब मुसा०—ए चुप रहो ।

पाभू०—यह क्या कठिन है ! कुछ जगलियोको हरा दिया है । कठिन क्या है ?

सब मुसा०—और नही तो क्या !—कठिन ही क्या है !

पाभू०—उन जगलियोंके साथ युद्ध करना कठिन ही क्या है ? हाँ, अगर पाभूरावको परास्त करता तो समझता ।

सब मुसा०—हाँ, तो समझता ।

पाभू०—हाँ देखूँ—आवे मेरे सामने ।—मैंने एक बार एक युद्ध किया था—जानते हो ?

३ मुसा०—जी नहीं। यह तो कभी नहीं सुना कि महाराजने युद्ध किया था!—कब?

पाभू०—ए चुप रहो—

सब मुसा०—ए चुप रहो न।

पाभू०—कब?—इस खोजकी क्या जरूरत? युद्ध किया था। इस बातको सभी जानते हैं। (चौथे मुसाहबसे) क्या कहते हो—तुमने सुना नहीं?

४ मुसा०—सो महाराज जब खुद फर्मा रहे हैं तब जरूर ही सुना है। लेकिन सुना है या नहीं, सो ठीक याद नहीं आता।

पाभू०—चुप रहो।

सब मुसा०—(जोरसे) चुप रहो।

पाभू०—ठीक है, युद्ध नहीं किया। लेकिन चाहता तो क्या कर नहीं सकता था?

सब मुसा०—एँः, सो क्या कर नहीं सकते थे?

पाभू०—चाहता तो वीर होना कौनसी बड़ी बात है? लेखक, वक्ता, गवैया, जो चाहता वही हो सकता। लेकिन–हाँ लेकिन–शुरूका बन्धन जरा ढीला पड़ गया, यही ऐब हो गया।

सब मुसा०—हाँ, यही ऐब हो गया।

[चन्द्ररावका प्रवेश]

१ मुसा०—यह क्या चन्द्रराव, आज सबेरे ही उदय हो आये?

चन्द्र०—महाराज! एक बहुत जरूरी खबर लाया हूँ।

२ मुसा०—बदनामीहीकी बात तो?

चन्द्र०—बड़ी भारी बदनामीकी बात है! शूरतानके एक लड़की है, उसे तो आप जानते हैं?—महाराज कुछ खबर सुनते हैं?

पाभू०—हाँ सुनता हूँ ।—हाँ हाँ, उसके बाद ?

चन्द्र०—उसके सोनेकी कोठरीमे राणाके छोटे लड़के जयमलकी लाश निकली—

३ मुसा०—पुरानी खबर है।

चन्द्र०—और भी खबर है, सुनो तो।

सब मुसा०—सुनो सुनो ।

चन्द्र०—यह खबर उड़ी हुई है कि शूरतानने ही जयमलको अपनी लड़कीके सोनेकी कोठरीमे देखकर गोली मार दी है—

४ मुसा०—बिलकुल ही पुरानी खबर है !

चन्द्र०—अरे सुनो तो। रानाने यह सुनकर—महाराजके ससुरने—यह सुनकर—

पाभ०—शूरतानको पकड लानेके लिए सेना भेजी है—यही तो ?—इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

चन्द्र०—जी नही ।—रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—

पाभू०—अपनी पिलही फाड़कर जान दे दी । यही तो ! सो तो देगे ही।

चन्द्र०—नही राजासाहब, यह भी नहीं । रानाने यह सुनकर, —रानाने यह सुनकर—रानाने यह सुनकर—शूरतानको पचीस परगने दे दिये ।

सब मुसा०—गोली मारनेका इनाम !

पाभू०—हाँ !—यह कही हो सकता है ?

चन्द्र०—आइए राजासाहब ! सामना करा दूँगा । मेवारसे महाराजके पास एक दूत आया है, उसीने कहा है ।

पाभू०—मेवारसे दूत ? किस लिए ?

चन्द्र०—रानीसाहबको शायद ले जानेके लिए ।

पाभू०—रानीको ले जानेके लिए !

चन्द्र०—दूतने कहा, चित्तौर मे यह खबर फैली हुई है कि महारानी को यहाँ बड़ा भारी कष्ट है । महाराज उन पर बड़ा ही अत्याचार करते हैं ।

पाभू०—हाँ ! उसमे रानाके बापका क्या ! अपनी रानीके ऊपर मैं अत्याचार करूँ, या न करूँ, मेरी ख़ुशी ! उसका क्या ? मैं कुछ रानाका तनख़ाह खानेवाला नौकर थोड़े हूँ, जो मुझे उनके हुक्मकी तामील करनी होगी ! चलो तो, उस दूतको मारकर निकाल दूँ ।—आओ तो सब लोग, आओ तो—

सब मुसा०—हटो हटो ! महाराज जा रहे हैं ।

(आगे राजा और पीछे सब जाते हैं)

चौथा दृश्य ।

स्थान—बिदार । नदीतट पर वृक्षके तले ।

समय—तीसरा पहर ।

[अकेली तारा]

तारा—सिद्ध न मेरी हुई अभीतक साधना ।
आये कितने वर्ष और यों ही गये ।
अबतक मेरी मातृभूमि है शत्रुके
पैरों पर ही पड़ी । पूर्ण वह चन्द्रमा
राहु-ग्राससे छुटा नहीं ।

[दासीका प्रवेश]

दासी— इस ओर ही
महाराज आते हैं। उनके साथमें—
राजपुत्रि हैं—राजपुत्र मेवारके।

तारा—राजकुअँर मेवार-राज्यके ? क्या कहा !
कौन कुअँर है !

दासी— मँझले !

तारा— उनका नाम क्या ?
पृथ्वी—?

दासी— होगा राजकुमारी ! यहाँ तक
परिचय उनके साथ नहीं अबतक हुआ। (हँसती है)

तारा—तू इतना हँस रही किस लिए ?

दासी— "किसलिए—"
सो कुमारसे सुनिएगा। (प्रस्थान)

तारा— क्या बात है !
दासीका यह कैसा अद्भुत आचरण !!!
—नाम सुना है मैंने पृथ्वीराजका,
सुना न होगा किसने भारतमे भला ?—
पृथ्वीकी करधनी कीर्त्ति उनकी हुई !—
किन्तु आज वह इस कुटीरमे किसलिए
आये हैं ?—इस तरह अचानक क्यों भुजा
बाईं मेरी फड़क रही ? देखा नहीं
मैंने उनको कभी। नहीं मैं जानती,
कैसे हैं वह—लम्बे या नाटे, बहुत

गोरे हैं या काले, दुबले देहके
या मोटे हैं;—

[शूरतानके साथ पृथ्वीका प्रवेश]

शूर०— तारा! पृथ्वीराज यह
है। क्या इनका नाम सुना है?

तारा— हाँ पिता,
नाम सुना है।—राजकुअँर मेवारके!

शूर०—पृथ्वी! मेरी कन्या तारा है यही!
मुझ दरिद्रके मस्तकका है यह मुकुट
मेरी कन्या तारा।—बेटी! क्या सुना
तुमने—पृथ्वीराज पठानोंको भगा,
भुजबलसे कर टोडाका उद्धार, सो
समाचार खुद लाये हैं!

तारा— मैंने नहीं
सुना पिताजी।

शूर०— तुम्हे प्रतिज्ञा याद है
वह अपनी?

तारा— (सलज्ज भावसे) है याद मुझे।

शूर०— मेवारके
कुअँर! तुम्हे मैं जामाताके रूपसे
वरण करूँ, स्वीकार करो जो तुम इसे।
देता हूँ दामाद बनाकर मैं तुम्हें
आशीर्वाद।

पृथ्वी०— अवश्य मुझे स्वीकार है—
जो तारा स्वीकार करें।

शूर०— वह कर चुकी।

(ताराका हाथ पृथ्वीराजके हाथमें देकर)

पृथ्वी, तुमको देता हूँ अपनी सुता।

—साक्षी इसके नारायण हैं!—पुत्र, तुम

सुख पाओ! तुम भी बेटी, होओ सुखी।

(वज्रध्वनि होती है)

पृथ्वी०—निर्मल है आकाश, वज्रके पातका

शब्द कहाँसे हुआ?

शूर०— पुरोहितको बुला

उचित रीतिसे, शुभमुहूर्त्त, मैं, ब्याहका

पूछूँगा।—अब पुत्र, चलो, बाहर चले।

(ऊपर देखकर)

आँधीसी उठ रही पूर्व-आकाशमे!

(पृथ्वीराजसहित शूरतानका प्रस्थान)

तारा—यह पृथ्वी हैं!!! प्रभु, मनमे बल दीजिए—

पूर्ण प्रतिज्ञा अपनी जिसमे कर सकूँ!—

स्वयवरा, हूँ क्षत्रियकी कन्या, कभी

क्षत्रियका प्रण झूठा हो सकता नही।

[दासीका प्रवेश]

दासी—क्यो हँसती थी—राजकुमारी—आपने

जान लिया अब?—स्वामी मनभाये मिले?

यह क्या, तुमने मुँह अपना लटका लिया!

रोती क्यो हो?

तारा— श्यामा, मैं रोती नहीं।

मातासे मत कहना, करती हूँ मना।

दासी—क्या न कहूँगी राजकुमारी ?

तारा— कुछ नही ।—

चलो चले हम माताजीके पास अब ।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—सूर्यमलका बैठकखाना ।

समय—रात ।

[नवाब मुजफ्फर और सूर्यमल ।]

नवाब—कुछ न कर सकें बूढ़े राना रायमल ।

एक कुअँर उनका जयमल मर ही चुका;

सग लापता हुए, एक पृथ्वी रहे—

वे ही हैं युवराज, मगर वह दूर है—

कमलमीरमे राज्य बसाया है नया ।

सुना, बुलाया था उनको मेवारमें

रानाने, वह वीर नही राजी हुआ—

सूखा दिया जवाब । इसीसे इस घड़ी

हमला करना बहुत सहज चित्तौर पर ।

तुम जो मेरी मदद् करो इस वक्त तो

रानाको बेशक शिकस्त मैं दे सकूँ ।

सूर्य०—उससे मेरा लाभ ?

नवाब— तुम्हे मेवारकी

गद्दी दूँगा ।

सूर्य०—　　　　　मुझे न गद्दी चाहिए ।
　　जिसने पाला बचपनसे, इतना बड़ा
　　किया—समझकर छोटा भाई—प्यारसे,
　　उसके ही होकर विरुद्ध मैं युद्धमें
　　शस्त्र उठाऊँ ?

नवाब—　　　　　पाला बचपनसे ! अरे
　　कैसे हो नादान ! कौन मासूमको
　　बचपनमें पालता नहीं ? यह कायदा
　　कुदरतका है । उससे ही लाचार हो
　　लोग परवरिश करते हैं—यह है धरम ।
　　अगर भलाईका यह अच्छा कायदा
　　कहीं न होता, तो दुनियामें कौन फिर
　　रहता ? देखो, दूध पिलाती है गऊ
　　बछियाको; जब कोई आफत देखती,
　　उसे बचाती जान होमकर; पर वही
　　बछिया जब हो बड़ी, गऊके रूपमे
　　पैदा करती बच्चेको, तब चाहती
　　उसको ही—हरघड़ी प्यार करती उसे ।
　　अपनी माकी ओर देखती भी नही ।—
　　इस दुनियामे यार, कौन किसके लिए
　　अपना हक छोड़ता ?

सूर्य०—　　　　　　　　राज्य-मेवारमे
　　मेरा कुछ भी स्वत्व नहीं है म्लेच्छपति ।

नवाब—कहता है यह कौन, तुम्हारा हक़ नहीं ?
　　किसने तुमसे कहा; बड़ाभाई बड़ा

छोटेसे है ? कौन बड़प्पन है उसे ?
एक पेटसे दोनो ही पैदा हुए ।
डीलडौलमे, रूप-रंगमे, तुम बुरे
नहीं रायमलसे । कमाल भी कम नहीं ।
उनके हैं दो पैर, तुम्हारे भी वही ।
उनके हैं दो हाथ, तुम्हारे क्या नहीं ?
तो फिर सिर पर ताज तुम्हारे क्यो नहीं ?
क्यों वह राना हुए, और तुम सिर्फ हो
उनके नौकर—मेहरबानियोंसे दबे ?—
दिये हुए उनके टुकड़े खाते पड़े !
तुम दिलेर हो, और बहादुर हो: तुम्हे
शर्म न आती ? गर्म खून होता नहो ?
इस दुनियामे, जिसके दोनो हाथमे
ताकत है, बस वही असल हक़दार है ।

सूर्य०—ताकत ? मेरी क्या ताकत है ? सिर्फ मैं
सेनापति हूँ । यह सेना मेरी नही;
रानाकी है ।

नवाब— रानाकी कैसे हुई ?
पैदायशके दिन तो राना साथमे
लेकर इतनी फौज नहीं पैदा हुए ?
अख्तियार है तुम्हे बराबर फौजका,—
कुछ ज्यादा भी अगर कहे तो ठीक है ।
तुम सेनापति हो, राजा ही रायमल ।

सूर्य०—(सोचकर) नही—दग़ा मैं नहीं करूँगा।

नवाब— तो सदा
भाईके ही टुकड़े तोड़ोगे यहाँ !!!
कायर है, जो रखकर ताक़त हाथमे
औरोंका मुँह ताका करता पेटको।
जगो बहादुर, बदनामी मेटो; उठो—
लो अपनी तरवार—करो कोशिश कड़ी !
देखोगे, जो अपने बलसे छीनकर
लाता, ख़ुशकिस्मती उसी नरकी तरफ
रहती है। तुम पाते हो इस वक्त तो
खाने को तनख़्वाह, रायमल जो तुम्हे
देते है हो मेहरबान, पर और जब
कोई होगा राना—तो वह भी तुम्हे
देगा यों ही—यह कह सकता कौन है ?

सूर्य०—(स्वगत) क्या कर सकता ?—जो कि चारणीने कहा
वह शायद होनेवाला है सत्य ही।
मेरा क्या वश ? मै उसमे क्या कर सकूँ ?
क्षुद्र यन्त्र हूँ मै होनीके हाथका।—
यह होगा ही (प्रकट) म्लेच्छराज, तो हो वही।

नवाब—(उल्लासके साथ)
करते हो मजूर ?

सूर्य०— मुझे मजूर है।

नवाब—नही, खाइए कसम।

सूर्य०— करूँ स्वीकार मैं।

नवाब—(कागज निकालकर)
यह है दस्तावेज, दोस्त, इस पर अभी
करो दस्तख़त, अपने तनके ख़ूनसे।

सूर्य०—इतना तुमको अविश्वास है ? लो, करूँ
हस्ताक्षर भी।
(अपने शरीरके रक्तमें हस्ताक्षर करना)
नवाब—ठीक ! जाँचना था मुझे—
दे सकते हो खून या नहीं, जो पड़े
कहीं जरूरत।
सूर्य०—मैं क्षत्रिय हूँ म्लेच्छपति !
नवाब—तुम छत्री हो, सच्चे छत्री हो। सुनो
सेनापति, सब फौज करो अपनी जमा !
मैं भी अपनी फौज जमा करने चला।
सूर्य०—अच्छा !
नवाब—अच्छा !—लो जाता हूँ इस घड़ी।
(प्रस्थान)
सूर्य०—मैं राना मेवार-राज्यका ! बात यह
डरते-डरते मुझे सोचना चाहिए।
मैं राना मेवार-राज्यका।—उच्च पद
है यह ! लेकिन बलि देता हूँ –दे चुका—
सभी धर्म सब पुण्योंका फल इस लिए !
—कैसा है यह 'त्याग' ! आज मैं क्या हुआ !
भाईसे विश्वासघात यों कर रहा !—
यह क्या मैंने उचित किया ?—बिलकुल नहीं।
समझ रहा सब। उचित नहीं मैंने किया।
धीरे-धीरे स्पष्ट समझमें आ रहा—
किया घोर अन्याय। हाय, मैं कर रहा

अति अनुचित अन्याय। किन्तु अब क्या करूँ?
आज प्रतिज्ञा अनुचित की!—क्यों की?

[तमसाका प्रवेश]

सूर्य०— प्रिये,
पूर्ण मनोरथ हुआ तुम्हारा।

तमसा— आड़से
मैं सब कुछ सुन चुकी। सुना तुमने नहीं,
सहज ढगसे जब मैंने तुमसे कहा।
म्लेच्छराजने आकर जो समझा दिया,
तो बालकसे मान गये उसका कहा।

सूर्य०—सच है! मैंने मानलिया—बचपन किया!
तमसा! तमसा! यह अनर्थ कैसा किया?
मैंने यह क्या किया? हाय, यह क्या किया?

तमसा—जो कुछ था कर्त्तव्य, वही तुमने किया।

सूर्य०—नहीं नहीं, मैं नहीं करूँगा यह घृणित—
ऐसा निन्दित—काम!—कभी होना नहीं।

तमसा—याद नहीं है, तुमने अपने रक्तसे
हस्ताक्षर कर दिये प्रतिज्ञापत्र पर?
इसी लिए मैंने नवाबके पास यह
भेजी थी अपनी सलाह—"वह आपसे
करवाले दस्तखत प्रतिज्ञापत्र पर
देह-रक्तसे।"

सूर्य०—(विस्मयसे आँखे फाड़कर) नारी! तू क्या कह रही?
तूने दी थी यह सलाह?—षड्यंत्र है?

सब कुचक्र है !—नारी ! तू क्या कर रही !
कूटनीति राजोंकी होती आप ही
बड़ी भयंकर, तिसपर जो उसमें कहीं
स्त्रीकी बुद्धि प्रवेश करेगी, तो नहीं
कुशल राज्यकी—अभी प्रलय हो जायगा ।
—यह क्या मैंने किया ! आज यह क्या किया !
सर्वनाश—बस सर्वनाश हो कर लिया !

तमसा—किया सो किया, स्वामी, आशा है मुझे,
अब न प्रतिज्ञापालनमें होगे विमुख ! (हाथ पकड़ती है)

सूर्य०—जाओ, अब मत करो खुशामद व्यर्थकी ।
झूठा प्यार दिखाती मतलबके लिए ।
स्वार्थसिद्धिके लिए स्त्रियाँ अच्छी तरह
ढोंग प्रेमका रच सकती हैं । बस हटो,
जाओ, सुनना नहीं चाहता और कुछ !
छोड़ूँगा प्रण नहीं ।—किन्तु नारी ! स्वयं
रणमें दूँगा प्राण ।

(तमसाका प्रस्थान)

सूर्य०—   युद्ध यह तो मुझे
करना ही होगा अवश्य । पर मैं प्रथम
यथाशक्ति निजसेनासंग्रहके लिए
मौक़ा दूँगा भाईको । वह वृद्ध है,
निःसहाय है, तोभी अपनी शानके
मारे अपने वीर कुँअरसे वह कभी
कुछ सहायता स्वयं माँगनेके नहीं ।

मैं पृथ्वीको आप युद्धकी यह खबर
भेजूँगा। फिर जगदंबा जो कुछ करे।
(प्रस्थान

छठा दृश्य।

स्थान—मीनालोगोंका राज्य।
समय—चाँदनी रात।
[पृथ्वीराज और तारा]

तारा—मैंने सीखा प्रेम नही था, प्रेमका
जाना था विज्ञान नही, तुमने मुझे
हाथ पकड़कर सभी सिखाया नाथ!

पृथ्वी०— मैं
गुरु हूँ तारा, और तुम्हारा शिष्य भी।

तारा—मैंने सोचा न था, क्षमा करना मुझे—
मैंने सोचा न था, कभी मै इस तरह
रुचिसे तुमको प्यारकर सकूँगी प्रभो।
राह-घाटमे चारण लोगोको कहा
सुनती थी जब नाथ तुम्हारी वीरता,
तब उत्कंठित हृदय चाहता था यही—
तुम्ही मिलो पति। यही लालसा थी लगी।
फिर जब दर्शन मिले, हृदयमे उस घड़ी
चोट लगी—अनुरूप रूप पाया नही।
कठिन भावसे भरा देखकर मुख, हुआ

भयका सा संचार । नाथ, सोचा यही—
बेचा अपना रूप आप ही । किन्तु फिर
जितना तुमसे मिली और परिचय हुआ,
पाया उतना ही उदार ऊँचा तुम्हे ।
मुग्ध हो गई । इन चरणोको आज मैं
मन-वाणी-कायासे दासी हो रही ।

पृथ्वी०—तारा ! प्राणेश्वरी ! जानता था नहीं,
इस पृथ्वोकी कठिन गोदमे यह नई
स्निग्ध और स्थिर बिजली, यह प्रिय चाँदनी
चलती-फिरती, यह सजीव सौरभ सुखद,
यह सदेह सगीत, छिपा है इस तरह ।

तारा—मैं जानूँ, यह उक्ति मुझे फबती नही ।
तुम करते हो प्यार मुझे जी-जानसे—
इससे ऐसा तुम्हे मूढ़ विश्वास है ।
मैं बिजली भी नहीं, चाँदनी भी नही,
और नही सगीत; सिर्फ हूँ आपकी
दासी तारा ।—मुझमे गुण हैं, दोष हैं ।

पृथ्वी०—प्रिये, मुझे तो दोष देख पड़ते नहीं ।

तारा—प्रेम देखता नही; प्यार केवल करे !
सागर-जलके तुल्य प्रेम बढ़ता हुआ
ढक देता है गिरि-गह्वरको एक-सा ।
वह वसन्तके वायु-सदृश संगीत या
सौरभ केवल लाता है, आनन्द दे ।—

गीत ।

ठुमरी, पजाबी ठेका ।

प्राणसखा, यहि हृदय-कुंज-वन-बीच रहहु तुम प्यारे ;
है एकान्त शान्त सब दिसि; निसि-दिवस होहु नहिं न्यारे ।
स्निग्ध वसंत सुसेवित विकसित चंपा, जूही, बेला ;
बिहरहु मेरे हृदयविलासी, त्यागि सकल अवहेला ।
घेरि रहहु मोहिं निज भुज-भीतर, हे चिरजीवन-संगी ;
देहौं पिकरव, मलय-समीरन, कुसुमहार सुन्दर बहुरंगी ।
तुम्हरे सयन हेत, हे प्रियतम, प्रीति-प्रतीति बढाई ;
मैं यह सीतल, कोमल, उज्ज्वल देहों हृदय बिछाई ।

[एक भृत्यका प्रवेश]

भृत्य—आया लेकरपत्र दूत मेवारसे ।
पृथ्वी०—आया है मेवार-राज्यसे ? तो उसे
लौटा दो ।
तारा— क्या नाथ कहा ! छी छी !—प्रभो,
वृद्ध पिताको अपमानित करते हुए
लौटा दोगे उनके भेजे दूतको ?—
प्राणेश्वर !—मैं जानूँ, जीके रोषसे
कहते हो यह बात। पिताको चित्तमे
चाहो तुम; यो कभी रोष होता नहीं ।
किन्तु रोष-अभिमान राहु बनकर अगर
पूर्ण चन्द्रको ग्रसता है, तो चन्द्र फिर
राहुमुक्त हो हँसता है ।
पृथ्वी०—(नौकरसे) अच्छा ! उसे
यहाँ बुला लो ।

भृत्य— जो आज्ञा। (प्रस्थान)

तारा— मेवारको

तुम न चाहते नाथ?

पृथ्वी०— प्रिये मेवार ही

नहीं चाहता मुझे।

तारा— जगत्‌मे कौन है

ऐसा, प्यारे, तुम्हे चाहता जो नही?

[दूतका प्रवेश]

दूत—महाराज, एक यह पत्र सूर्यमलने दिया

महाराजको।

पृथ्वी०— लाओ, देखूँ पत्र मैं।

(पत्र लेकर पढना और विस्मय प्रकट करना)

तारा—प्राणनाथ, क्या समाचार है पत्रमे?

पृथ्वी०—है विचित्र ही खबर!—जगत्‌मे, जो कभी

हुआ कही भी नहीं, वही मेवारके

राजघरानेमे अब होना चाहता।

चचा हुए विद्रोही। उनके साथ हैं—

म्लेच्छ मुजफ्फर और शूर सारग भी

तीनों मिलकर एकसाथ चित्तौर पर

जोर-शोरसे हमला करना चाहते।

इससे भी बढ़कर विचित्रता और है—

विद्रोहीने आप खबर दी है मुझे,

और किया अनुरोध—पिताका पक्ष लो;

वह बूढ़े हैं; सहायता उनको करो।

तारा—अति अद्भुत है! जाओगे?

पृथ्वी०— तारा—नहीं!

अब रक्खूँगा नहीं पैर चित्तौरमे।

तारा—क्या कारण है नाथ?

पृथ्वी०— पिताने देशसे

मुझे निकाला आप। प्रिये, इसके सिवा,
मुझे पिताने आप बुलाया कुछ नहीं।
फिर क्या है अधिकार चचाको इस समय
मुझे बुलानेका!

तारा— प्यारे, अभिमान फिर?

—वृद्ध पिता पर जब विपत्ति है आ पड़ी,
तब किस जीसे बैठ रहोगे तुम यहाँ?
कुछ भी हो वह वृद्ध, पिता, असहाय हैं;
वह रूठे तो कुछ भी है अनुचित नहीं
किन्तु नाथ, तुम रूठ रहोगे, इस समय!
तुम उनके हो पुत्र, वीर हो साहसो,
मिली पूर्ण सम्पत्ति और गौरव तुम्हें।
क्षुद्र नीच अभिमान, रूठना बापसे।
तुम्हे सोहता नहीं। तुम्हारे बाप जब
यों विपत्तिमें पड़े—शत्रुसे घिर रहे—
तब यों हो निश्चिन्त, विषय-सुखमग्न हो,
बैठे रहना, सोह नहीं सकता तुम्हे।
—उठो वीरवर! उठो प्राणप्यारे! उठो,
इस कलकको दूर करो।—यह कालिमा
नहीं छू सके विमल तुम्हारी कीर्तिको।

पृथ्वी०—तो फिर होवे यही—और तुम ?

तारा—　　　　　　　　　　साथ ही

जाऊँगी संग्रामभूमिमे । नाथ !—मैं

राजपूतकी बेटी हूँ ।

पृथ्वी०—　　　　　　　　तो हो यही ।—

तारा !—तुम हो धन्य । भाग्यहीसे मिलीं

मुझको । पृथ्वीके चरित्रको तुम प्रिये,

बना रही हो अपने हाथोंसे भला ।

तारा—मैं तो केवल अग्नि-सदृश हो, खान के

सोनेको कर रही शुद्ध—संसर्गसे ।

(दोनोंका प्रस्थान)

चौथा अंक ।
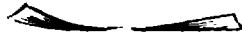
पहला दृश्य ।

स्थान—राना रायमलकी बैठक ।

समय—तीसरा पहर ।

[अकेले हथियारबंद राना]

राय०—युद्ध छिड़ गया । सेनापतिने की दगा ;
विद्रोही बन, सारी सेना साथ ले,
मिला मालवेके नवाबसे ?—सूर्यमल !
तीन पुत्र चुपचाप विसर्जन कर दिये—
पुत्र-शोकसे कभी न मैं विचलित हुआ,
प्राणोंसे भी प्यारी कन्या एक थी—
उसका कठिन वियोग नहीं इतना खला;
—मगर सूर्यमल—यह तेरा असदाचरण
लगा वज्रसा, हाय, कलेजेमे । अहो,
इतनी मैंने व्यथा कभी पाई नहीं ।
अरे सूर्यमल, तूने क्यों ऐसा किया ?
क्या तूने यह किया ! क्या किया ? क्या किया ?
यह तो मैंने कभी भूलकर स्वप्नमें
भी सोचा था नहीं । हाय यह क्या हुआ !

[दूतका प्रवेश]

राय०—क्या है ताज़ी खबर ?

दूत— ख़बर तो है बुरी—

रानाजी ! भारी विपत्ति सिर पर खड़ी।

दक्षिण है 'बातुरो' पहाड़ी वन, प्रभो,

शत्रु-सैन्यका उस पर कब्जा हो गया।

राय०—यह सच है ?

दूत— हाँ महाराज—सब सत्य है।—

हमला करनेको अब वे चित्तौर पर

चढ़े चले आरहे। पड़ी है छावनी

'गंभीरा' के तट पर।

राय०— स्पर्धा यहाँ तक !

सेनापति क्या करे, हमारी ओरका ?

दूत—भाग गये नव-सेनापतिको साथ ले।

राय०—रिश्वत ले ली।—और नगर चित्तौरके

रक्षक, पहरेदार, सिपाही ?

दूत— वे सभी

पहलेहीकी तरह द्वार-रक्षा करें।

राय०—अच्छा जाओ।— (दूतका प्रस्थान)

राय०— समरभूमिमे मैं स्वय

कल जाऊँगा। और करूँगा क्या ?—वहाँ

युद्ध अकेले करके दूँगा प्राण मैं।

मैं क्षत्रिय हूँ। भय तो जानूँ ही नहीं !

मृत्यु और मैं, दोनों खेले साथ ही—

एक गोदमे पले। मृत्युको मैं नहीं

डरता। ले तलवार हाथमें—युद्धमें—

आज मरूँगा वीर क्षत्रियोंकी तरह,
गढ़ चितौरके राना लोगों की तरह,
बड़ी ख़ुशीसे ।—लेकिन भाई सूर्यमल !
तूने यह क्या किया ?—भवानी ! सूर्यकी
रक्षा करना ! इसे किसीने लोभ दे
इस कुचक्रमे फँसा लिया है व्यर्थ ही ।
(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—पहाड़ ।
समय—तीसरा पहर ।
[अकेली तारा]

तारा—घोर युद्ध हो रहा । मृत्यु नाचे खड़ी ।
युद्धभूमिमे चार ओर ज्यों मृत्युकी
लहरे सी उठ रहीं । आजतक दृश्य जो
पहले देखा न था, आज देखा वही,—
हाथी, घोड़े और सिपाही रक्तमे
सने हुए सब लुढ़क रहे चारों तरफ ।
लाशोंके तो लगे ढेर-के-ढेर हैं ।
—आज सुना—जो सुना न था पहले कभी—
कोलाहल विकराल और ललकारना,
शस्त्रो की झनकार, मरणके कालका
आर्त्तनाद । यह युद्ध आज मैंने किया—
जीवनका भी मोह छोड़कर जोशसे ।

इन हाथोंसे आज मुजफ़्फर म्लेच्छको
क़ैद किया है—लाई हूँ रणभूमिसे।

[दो सिपाहियों के साथ कैदीकी सूरतमे मुजफ्फर का प्रवेश]

सिपाही—रानीजी,

तारा— मेरे डेरेमें ! किस जगह
रक्खोगे तुम उस क़ैदीको ?– वीर हो
तुम नवाब ! मैं तुम्हे युद्धके अन्तमे
कर दूँगी स्वाधीन–छोड़ दूँगी । रहो
निर्भय । हम योद्धा क्षत्रिय हैं ! मारते
नहीं निहत्थे कैदीको !

नवाब— कुछ शक नहीं—
एक बहादुर औरत तुम हो !

तारा— म्लेच्छपति,
क्षत्रिय-नारी अबतक देखी थी नहीं !
क्षत्रिय-नारी हूँ मै। मत विस्मय करो।
—जाओ, ले जाओ कैदीको !—

(सिपाहियों के साथ मुजफ्फ़रका प्रस्थान)

तारा— लौटकर
आवेंगे जब रणसे मेरे प्राणपति,
तब सुनकर यह खबर खुशी होगी उन्हे;
प्राणोंसे भी बढ़कर चाहेंगे मुझे।
मेरे गौरवका यह दिन है आज तो।—
किन्तु, इस घड़ी—अबतक—स्वामी हैं कहाँ ?
—बीतगया दिन सारा। अबतक युद्धसे

लौटे क्यों वह नहीं ? जानती, युद्ध मे
हो जाते हैं पागलसे ।

[सैनिकों सहित सेनापतिका प्रवेश]

तारा— यह क्या ? यहाँ
सेनापति ? तुम आये हो रणभूमिसे

सेनापति—हाँ रानीजी, समरभूमिसे आ रहा
हूँ मैं !

तारा— हैं युवराज कहाँ !—क्या शत्रुने
हार मान ली ? --विजय हुई ?—जल्दी कहो ।

सेनाप०— रानीजी !—जय ! घिरे हुए युवराज हैं—
शत्रुसैन्यमे । वीर सिहके दर्पसे
युद्ध कर रहे । इतना आगे बढ़ गये—
नही रही अब राह लौटनेकी । वहाँ
शत्रुव्यूहमे उनके सब साथी मरे ।

तारा—क्या कहते हो सेनापति ? तुम छोड़कर
उनको आये यहाँ युद्धको भूमिसे ?
तो तुम भागे युद्धभूमिसे, लोमड़ी
जैसे, लेकर खबर हारनेकी बुरी ?
सेनापति ! हो मर्द, और क्षत्रिय ? तुम्हे—
लज्जा आती नही ? तुच्छ स्त्री मैं अगर
लौटी रणसे, तो दुश्मनको क़ैद कर—
जय पाकर । अब फिर मैं जाती हूँ वहाँ—
अभी उबारूँगी पति को आपत्तिसे !
कौन चलेगा, आवे मेरे साथ वह ।

उठे प्रबल तूफ़ान जिस तरह, उस तरह
शत्रुसैन्यके बीच जा पड़ूँगी अभी।
कर दूँगी निर्मूल ! उड़ा दूँ धूलसा !
वाडवाग्निके सदृश, एक ही साँसमे
कर डालूँगी भस्म शत्रुदलको अभी।
—जो चाहे वह चले। न चाहे, वह रहे।

सेनाप०—रानीजी ! जननी पुकारती जब स्वयं—
ऊँचे स्वरसे—खड़ी, कौन तब खोहमे
छिपा रहेगा ? किसको इतना मोह है—
प्राणोंका ?—बस चलो, विकट हुकारसे
टूट पड़ें हम शत्रुसैन्य पर। युद्धमे
जीतेंगे, या प्राण वहीं देंगे।—चलो।

तारा—तो फिर आओ, चलो; बुलाओ जोशसे
सब सेनाको। कहो—उच्च स्वरसे कहो—
'डरो नहीं।' तुम डरो नहीं—मैं साथ हूँ।

(जमीनमे घुटने टेककर)

माता ! चण्डी ! शक्ति ! भक्त-रक्षा करो।—
प्राणेश्वरके पास न जबतक जा सकूँ,
तबतक रणमे तुम उनकी रक्षा करो।
—महाशक्ति ! दो शक्ति ! सती निज नाथका
करनेको उद्धार जा रही युद्धमे।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—एक साधारण घरका आँगन ।

समय—तीसरा पहर ।

[शान्तिरक्षक सिपाही, पहरेदार और एक सैनिक]

सैनिक—आः, कैसा घमासान युद्ध हुआ ।

सिपाही—हाँ हाँ, कैसा हुआ—बताओ तो ! कौन जीता ?

सैनिक—आः, युद्ध देखकर आँखे ठडी हो गईं।

पहरेदार—एँ ! युद्ध देखकर आँखे कैसे ठडी हो गईं !

सिपाही—कौन जीता ?

सैनिक—युद्ध जिसे कहते हैं !

सिपाही—कैसा !—कौन जीता ?

सैनिक—तो सुनोगे ? सुनो। लेकिन मैं जिस क़ायदेसे कहूँगा, उसी क़ायदेसे तुमको सुनना पड़ेगा। नहीं तो—बस चुप।

दोनो—अच्छा वही सही।

सैनिक—सुनो। पहले समझलो कि ख़ूब युद्ध हो रहा है ।

दोनो—अच्छा।

सैनिक—समझते हो ?

दोनों—समझते हैं ।

सैनिक—समझते हो ?

दोनों—समझ लिया, उसके बाद ?

सैनिक—इस तरह 'उसके बाद' कह देनेसे काम नहीं चलेगा। सिर्फ़ सुने जाओ।

दोनो—अच्छा ।

सैनिक—उत्तरसे मुजफ्फरने, दक्षिणसे सारंगदेवने, पूर्वसे सूर्यमलने और पश्चिमसे रायमलने चित्तौर पर हमला किया ।

सिपाही—सो कैसे ? हमारे राना रायमलने चित्तौर पर कैसे हमला किया ?

सैनिक—फिर वही 'किस तरह' ।—इसी तरह ।

पहरे०—रायमल चित्तौरके राना हैं; वह क्यो चित्तौर पर चढ़ाई करेंगे ?

सैनिक—यह भी तो सही है । तो फिर पश्चिमसे कौन आया ? तीन तरफ तो ठीक हो गया; पश्चिम तरफ क्या बिलकुल खाली था ? उधरसे कौन आया ?

दोनों—यह हम क्या जाने ?

सैनिक—यह लो—ठहरो—समझ लो, मैं—जैसे—मैं जैसे मुजफ्फर नवाब हूँ, तुम सूर्यमल हो, और तुम जैसे सारंगदेव हो—और रायमल कौन होगा ?

दोनो—हम क्या जाने ?

सैनिक—अच्छा ठहरो । (सहसा बाहर जाकर राह चलनेवाले एक किसानको पकड लाकर)—यहाँ—खड़ा हो ।

किसान—हजूर, मैने तो कुछ किया नहीं ।

सैनिक—अरे, कौन कहता है कि किया है ।

किसान—जी, तो फिर—

सैकिन—तेरी कुछ जरूरत है । तू राना रायमल हो सकेगा ?

किसान—जो नहीं ।

सैनिक—जी नहीं क्या रे ! खड़ा हो तुझे राना रायमल होना होगा ।

किसान—जी—

सैनिक—अरे खड़ा हो ना । जरा देरके लिए तुझे राना रायमल होना पड़ेगा । छोड़ेंगे नहीं ।

किसान—जी, क्या करना होगा ?

सैनिक—कुछ न करना होगा । सिर्फ खड़ा रहना होगा और बीचबीचमे जरा तुझे अपनी कुदाल घुमानी पड़ेगी । समझा ?

किसान—जी हाँ ।

सैकिन—अच्छा, सूर्यमल कौन है ?

सिपाही—मैं ।

सैकिन—अच्छी बात है ! (पहरदारसे) और तुम मुजफ्फर —नहीं नही, मुजफ्फर तो मैं हूँ । तुम सारगदेव हो ! (किसानसे) ठीक तौरसे खड़ा हो । सूर्यमल, पूर्व ओर रहो । सारगदेव—उत्तर ओर, नहीं नही दक्षिण ओर रहो । और मैं मुजफ्फर उत्तर ओर रहूँगा । रायमल बीचमे हैं । समझ लो, खूब युद्ध हो रहा है— (किसानसे) कुदाल घुमा, कुदाल घुमा—युद्ध हो रहा है ।

दोनों—युद्ध हो रहा है ।

सैनिक—सारंगदेव ! दक्षिण ओरसे आओ । सूर्यमल ! पूर्व ओरसे आओ । और मैं, यह–तीनो जने रायमल पर हमला करो ।

(सब आकर किसानको मारते है)

किसान—अरे—

सैनिक—तुझे कुछ डर नहीं है । पृथ्वीराज आते ही होंगे; सिरके ऊपर कुदाल घुमाये जा । देखना, हमारे न लग जाय । घुमा । पृथ्वीराज ताराके साथ आते ही होंगे ।

(किसान चिल्लाता और कुदाल घुमाता है)

[हल लिये हुए एक किसान और उसकी स्त्रीका प्रवेश]

२ किसान—धनीसाहको तुम सब लोग मारते क्यों हो ? शराब पीकर मतवाले हो रहे हो क्या ? निकलो पाजियो ।

सैनिक—(फिरकर देखकर) यह लो पृथ्वीराज भी आगये—ताराबाई भी आगई । यह लो ताराने मुझे कैद कर लिया । (किसानकी स्त्रीके गलेसे लिपट जाता है) और पृथ्वी ! वह देखो सूर्यमल है—उसकी गर्दन पर वार कर । मुझे क्यो मारता है ? मैं तो मुजफ्फर हूँ । यह लो, युद्ध समाप्त हो गया । भाग सूर्यमल, भाग सारंगदेव, भाग भाग—पृथ्वी आगया । दौड़ लगाओ, दौड़ लगाओ ।

(तीनोंका भाग जाना)

२ किसानकी स्त्री—क्यों धनीसाह, तुमको ये लोग मारते क्यों थे ?

१ किसान—क्या जानूँ—मुझे—मुझे इन्होंने राना रायमल बनाया था ।

२ किसान—जरूर सालोंने ताड़ी पी है । चलो ।

१ किसान—(जाते जाते) मेरे भागोसे तुम आगये भाई । नहीं तो मेरी जान ही जाती ।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य ।

स्थान—सूर्यमलका पड़ाव ।

समय—रात ।

[सूर्यमल और उनकी स्त्री तमसा]

तमसा—नींद पड़ी ही नहीं ?

सूर्य०— नींद ?—आती नहीं ।—

दिनभर टहला किया पलँगके पास मैं।
दर्द—बड़ा ही दर्द हो रहा घावमे,—
कन्धे पर।—उफ ! तमसा ! तमसा ! मृत्यु क्यों
नहीं हुई ! प्रिय पृथ्वी ! मैंने गोदमे
रखकर पाला तुझे—किया इतना बड़ा।
उसका तूने पुरस्कार अच्छा मुझे
आज दिया। मेरे कन्धे पर अन्तको
यों तेरी तलवार पड़ी ?—पर दोष क्या
तेरा ? तू क्या करे ? लिया यह दैवने
बदला मुझसे। भाई मेरे रायमल—
मुझे उन्होने भी तो पाला गोदमे,—
बड़े प्यारके साथ किया इतना बडा।
खाकर उनका नमक उन्हींसे की दगा।
आज पुत्रने उनके बदला ले लिया।
किन्तु मृत्यु क्यो नहीं हुई ?

तमसा— अस्थिर नहीं
होना।

सूर्य०— अस्थिर ? हो जाऊँगा स्थिर; प्रिये,
दमभरमे।

[एक सैनिकका प्रवेश]

सैनिक— युवराज राज्य-मेवारके
खड़े द्वार पर है।

सूर्य०— पृथ्वी ! पृथ्वी !—उसे
ले आओ तुम सादर जल्दीसे यहाँ !

(सैनिकका प्रस्थान)

तमसा—(स्वगत) पृथ्वीराज शिबिरमे आया किस लिए ?

[पृथ्वीका प्रवेश]

पृथ्वी०—चचा, चची, मेरा प्रणाम स्वीकार हो ।

सूर्य०—आओ प्यारे पुत्र ।–बहुत दिनतक जियो !

(तमसासे) दो असीस ।–क्यो फेर लिया मुँह ? युद्धकी
भूमि नहीं यह, मेरा घर है । इस समय
पृथ्वी मेरा शत्रु प्राणघातक नही,
वही भतीजा मेरा प्राणाधार है ।
स्नेहपात्र है । दो असीस जीसे प्रिये,—
करो स्वयं सत्कार और अभ्यर्थना ।—
आओ बेटा ! मेरे प्राणोसे अधिक
प्यारे ! जुगजुग जियो ।

तमसा— जियो ।

पृथ्वी०— कहिए चचा !—

कैसा है अब घाव ?

सूर्य०— वेदना है विषम,

तो भी तुमको बहुत दिनों पर देखकर
मुझे बहुत कुछ शान्ति मिली ।

तमसा— पृथ्वी—किया

तुमने खूब सलूक चचासे ! वाहवा !

पृथ्वी०—इसका, मुझको, चची, आपसे अधिक ही

दुःख हुआ है ! (हाथोंसे मुह ढक लेना)

सूर्य०— तुमने तो कर्त्तव्य ही

अपना पालन किया—तुम्हारा दोष क्या ?

वृद्ध पिताकी रक्षा करनेके लिए
विद्रोहीके कन्धे पर तरवारका
वार किया। क्या बुरा किया? कर्त्तव्य था
यही तुम्हारा।—मैं अपने कर्त्तव्यसे
बेशक विचलित हुआ। अन्न जिसका सदा
खाया, खाकर पुष्ट हुआ, उससे दगा!
उस पर ही तरवार तान ली!—क्या कहूँ—
मैंने ही कर्तव्य नही अपना किया।

पृथ्वी०—हाय! चचा, किस लिए आपने यह किया?

सूर्य०—वह प्रसंग मत छेड़ो बेटा।—भूल मैं
गया पूछना अबतक भाईकी कुशल;—

पृथ्वी०—अबतक मुझसे और पितासे भेंट ही
हुई नहीं।—चाचाजी, मुझको इस समय
भूख लगी है। खाने को है कुछ यहाँ?

सूर्य०—(तमसासे) कुछ खानेको है? तमसा देना इन्हे।

तमसा—देती हूँ। (स्वगत) मिल जाती थोड़ी राख जो
तो देती वह इस मुँहमें। (प्रस्थान)

सूर्य०— तुम धन्य हो
पृथ्वी! और तुम्हारी पत्नी तारा धन्य है,—
अति प्रचण्ड विक्रमसे वह वीरांगना
पकड़ ले गई वीर मुजफ्फर को।—कहाँ
तारा है?

पृथ्वी०— हैं डेरेमे।

[भोजन लेकर तमसाका प्रवेश]

सूर्य०— लाई?

तमसा— यहाँ
जो कुछ था, ले आई हूँ। (पृथ्वीके आगे भोजन रखना)

सूर्य०— तमसा, कहो
खानेको तो।—तुम बेटा, भोजन करो।
तमसाकी तो प्रकृति जानते हो—इन्हे
बहुत बोलना कम पसद है।

पृथ्वी०—(भोजन करते करते) सिहके
विक्रमसे यह युद्ध आज मैंने किया,
चाचाजी।

सूर्य०— जो कन्धेमें लगता नही
ऐसा गहरा घाव, आज के युद्धका
फल होता और ही। मगर तो भी मुझे
इसका कुछ भी दुःख नही। मैं गोदके
पाले, अपने भाईके ही पुत्रसे
हारा हूँ।

पृथ्वी०— जल मुझे दीजिए।
(तमसाका जल देना)
पान भी।

तमसा—यह लो। (पान देना)

पृथ्वी०— तो मैं जाता हूँ अब; युद्धका
थका हुआ हूँ चचा। युद्धकी भूमिमे,
तड़के होगी मुलाकात—आशा करूँ।

सूर्य०—निश्चय होगी—अगर घड़ीभरके लिए
भी यह होगी शान्त घावकी वेदना।

पृथ्वी०—चचा, चची, मेरा प्रणाम स्वीकार हो ।

सूर्य०—कुलदीपक—युवराज राज्य-मेवारके !

जाओ; पाओ विजय युद्धमे; यश बढ़े ।

(पृथ्वीका प्रस्थान)

तमसा—ढग तुम्हारा मुझे समझ पड़ता नहीं ।

सूर्य०—समझोगी तुम एक रोज़ तमसा !—कहाँ

है सारग ?

तमसा— शिबिरमे अपने ।

सूर्य०— भेज दो

जाकर उसको यहाँ । युद्धकी मन्त्रणा

करनी होगी शीघ्र । (तमसाका प्रस्थान)

सूर्य०— जलाई है अगर

आग, जलेगी वह; उसमें जल जायँगे

नगर-गाँव सब ! मगर अगर जयलाभ हो ?

क्या होगा कर्त्तव्य ? करूँगा क्या ? स्वय

बैठूँगा सिहासन पर मेवारके ?—

नहीं । भतीजे पृथ्वीको मेवारका

सिहासन दे डालूँगा ! सपत्ति है

जिसकी, उसकी हो ! मैं जाकर अन्तको

दूर और एकान्त घने वनमे कहीं,

धर्म-कर्ममे चित्त लगाऊँगा वहाँ ।

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—सिरोही । यमुनाके महलकी छत ।

समय—रात ।

[अकेली यमुना]

यमुना—घोर अमावसकी यह काली रात है ।—
चमक रहे नक्षत्र-पुंज आकाशमे,
घने निराशाके सागरमे जिस तरह
बीती बातोंकी शुभ स्मृति हो सुखमयी ।
—पृथ्वी पर पूरा सन्नाटा छा रहा ।
सिर्फ दूर पर वह वंशी-ध्वनि सुन पड़े—
जैसे रोती रात करुण स्वरसे कहीं ।
—आ रजनी ! आ सखी ! मुझे तू प्रिय लगे
दोनों दुखिया, बैठ यहाँ एकान्तमे,
आ—रोवे चुपचाप, ताप कुछ शान्त हो ।

गान ।

आसावरी-धीमा तिताला ।

आवहु आवहु रैनि पियारी ;
तारनभरी, शान्तिसुखदायिनि, जीव रहैं सब दुःख बिसारी ।
पीड़ित व्यथित हृदयसों सजनी, तोहि रही मै आज पुकारी ;
धधकि रही है आगि हिये मह, शान्ति-सलिलसों बेगि बुझा री ।
लागत दुःख-सेल, हिय फाटत, मर्मव्यथा सो अकथ कथा री ;
कासों कहो, शान्तिमयि, तो बिन, अपनी रामकहानी सारी ।

घना, बहुत ही घना, अँधेरा छा रहा;
पृथ्वीको ढक रहा । निराशा भी घनी,

खूब घनी, ढक रही हृदयको, छा रही।
नहीं जानती, यह जीवनकी नाटिका
होगी कहाँ समाप्त। 'सतीका देवता
स्वामी है'—उपदेश चचाका यह, किया
जीवनका व्रत। दु:ख, शोक, अपमानमें
और चित्तके आन्दोलनमे—जो कि है
पारावार अपार—किया इस मन्त्रको
जीवनका ध्रुव-तारा। तो भी ज्योति वह
कभी कभी ढक जाती घन घन-जालसे।
देख पड़े फिर। किन्तु हाय, जानूँ, नही
इस समुद्रका पा सकती हूँ पार मै।
जानूँ, है ही नहीं अवधि इस दु:खकी।
तो भी रहती सदा धैर्य धारण किये।
इस व्रतका उद्यापन करती, दु:खमे,
बैठ अकेले-सूनेमे-चुपचाप मैं।
—तो भी पतिको प्यार नहीं मै कर सकूँ;
भक्ति, हृदयकी पूजा, दे सकती नहीं।—
प्रभो, दयामय, शक्ति दीजिए कर दया।—
शक्ति दीजिए; दुर्बल है मेरा हृदय।—
वह आते है स्वामी!—सहसा आज क्यों?

[पाभूरावका प्रवेश]

पाभू०—यमुना—

यमुना—(स्वगत) आवाज शराबके नशेके मारे भर्राई हुई है।

पाभू०—तुम्हारा नाम है यमुना? तुम्हारे बापको तो मैं नहीं पहचानता। तुम्हारे बापका नाम क्या है?

यमुना—मेरे पिता मेवारके राना रायमल हैं ।

पाभू०—ठीक है ! वही साला तो तुम्हारा बाप है । क्या नाम बताया उसका ? तुम्हारा यह बाप, प्यारी—तुम्हारा बाप चोर है—बड़ा पुराना चोर है ।—बुरा न मानो;—प्रमाण देता हूँ—

यमुना—प्रभू ! मेरे पिता साधु हैं या चोर, सो मैं तुम्हारे मुँहसे सुनना नही चाहती ।

पाभू०—प्रमाण देता हूँ—यही देखो, उस पाजी बदमाश बुड्ढेने अपने समधी शूरतानको अपना कुछ राज्य ही दे डाला । और, मैं क्या बाबा कहींसे बहता हुआ आया था । देखो यमुना, तुम्हारा भाई वह साला पृथ्वी—साला एकदम नीच, खुशामदी, जुआचोर, लुच्चा, रडीबाज—

यमुना—पैरों पड़ती हूँ प्रभू ! बस, रहने दो । मेरे मनको व्यथा न पहुँचाओ । मेरा जी बहुत दुखता है ।

पाभू०—ओः ! इनका जी दुखता है तो मानो मुझे नींद नहीं आती । सच कहूँगा, उसमे डर काहेका ; जरूर कहूँगा । मैं साबित किये देता हूँ कि पृथ्वीकी स्त्री पूरी तौरसे वेश्या थी । तुम्हारे भाई जयमलने उसे रक्खा था । उसके सोनेकी कोठरीमें जयमलकी लाश निकली थी । तेरे भाई पृथ्वीने—साधके भाई पृथ्वीने—तेरे प्यारे भाई पृथ्वीने—उससे ब्याह किया है कि नहीं ?—जायगी कहाँ ? सुने जा—

यमुना—तो मेरे आगे कहनेसे क्या होगा ?

पाभू०—क्या होगा ? होगा यह कि मैं तेरा सिर मुड़ाकर, सिर पर मट्ठा डालकर, गधेकी पीठ पर चढ़ाकर—तुझे देशसे निकाल दूँगा । ऐसे बापकी लड़की, ऐसे भाईकी बहनको अपने घरमें रखना कलंककी बात है ।

यमुना—तो वही करो।

पाभू०—लेकिन उससे पहले तेरे सामने यह तेरे बापके नाम पर एक जूता—तेरे भाई के नाम पर दो जूते—

(जमीन पर जूते मारना)

पाभू०—क्यों! हाः हाः हाः।

(प्रस्थान)

यमुना—यही स्वामी मेरे देवता है! मा जगदम्बे!—इस अन्धकारमें राह दिखाओ; अब नहीं सहा जाता।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य।

स्थान—जगलमे सेनाका पड़ाव।

जगह-जगह पर आग जल रही है।

समय—रात।

[सूर्यमल और सारंगदेव]

सूर्य०—जितना मुझसे हो सकता था, उतना किया। नगरसे नगरमें, वनसे वनमें भागते भागते अन्तको इस बातुरो-जगलमें आश्रय लिया है। अपना काम करनेमे मैंने कुछ कसर नही रक्खी।

सारग०—अपना काम आपने नहीं किया।

सूर्य०—अपना काम मैंने नहीं किया? हाय भगवान, भाईके विरुद्ध कुचक्र रचा; विश्वासघात किया; भतीजेके ऊपर तरवार चलाई। और तुम? तुम लूटके लिए व्यग्र हो रहे हो!

सारंग०—नही तो सिपाहियोंको तनख्वाह कहाँसे दी जायगी? आपके पास खज़ाना नहीं है; राज्यका भी रुपया नही है।

सूर्य०—इस तरह बुरे ढगसे इस लड़ाईका खर्च चलाना होगा, यह जानता तो कभी इसमे हाथ न डालता।

सारंग०—क्यो हाथ डाला था?—इसमे किसका दोष है?

सूर्य०—तुम्हारा दोष है। तुम्हारी सलाहसे ही यह सर्वनाश हुआ है।

सारग०—जो होना था सो हो गया। अब आगेके लिए उपाय सोचिए।—वह घोड़ेकी टापोंका शब्द है क्या?—शत्रु है क्या?

सूर्य०—यह निश्चय ही भतीजा पृथ्वी है। तरवार कहाँ है?

(तरवार लेना)

[वेगसे पृथ्वी और ताराका प्रवेश]

पृथ्वी०—यह है। (सूर्यमल पर हमला करना और उनका गिरना)

सारंग०—ओ पृथ्वीराज! तुम्हारे चचाके शरीरमें अब वह शक्ति नहीं है।

पृथ्वी०—चुप रह विद्रोही। (सूर्यमलसे) हारना स्वीकार करो।

सूर्य०—स्वीकार करता हूँ, पृथ्वी!

(पृथ्वीराज सूर्यमलको छोड़ देते है)

सूर्य०—पृथ्वी! तुझसे हार स्वीकार करता हूँ, इसमे मुझे लज्जा नही है! मैंने तुझे गोदमे खिलाकर इतना बड़ा किया है। इस सुन्दर सुगठित शरीरको धीरे धीरे चन्द्रमाकी कलाओंके समान बढ़ते देखा है। इसका हरएक हिस्सा, हरएक अंग-प्रत्यंग, इसकी हरएक चेष्टा मेरे निकट परिचित है। इस शरीरपर शस्त्र चलाते मेरी छाती फटने लगती है रे पृथ्वी।

पृथ्वी०—क्या करूँ चचा! जब तुमने ही यह युद्धकी आग सुलगाई है—

सूर्य०—यह न सोच तू पृथ्वी कि मैं मृत्युके भयसे यह बात कह रहा हूँ। चित्तौरकी वीरमण्डलीको ले आ; देख—इस समय भी उनसे लड़ सकता हूँ या नही। लेकिन तुझसे अब नहीं।

पृथ्वी०—क्यों चचा, युद्धमे तो अपने परायेका ख़याल नहीं किया जाता।

सूर्य०—ठीक है! लेकिन मैंने सोचकर देख लिया कि तुझसे युद्धमें मेरे जीतनेमे ही अधिक हानि है। युद्धमे अगर मैं मरूँ, तो मेरा क्या? मेरे सन्तान नही है। मेरे लिए कोई रोनेवाले नही हैं। लेकिन अगर तू मारा गया, तो चित्तौरका क्या होगा?—सदाके लिए मेरे मुँहमें स्याही पुत जायगी। तुझसे अब नही। चित्तौरके चुने हुए सौ जवान ले आ। अकेले उनसे युद्ध करूँगा। लेकिन तुझसे अब नहीं।

पृथ्वी०—(सिर झुकाकर) समझ गया चचा, इतने दिनके बाद समझ गया। युद्धमे क्यो तुम्हारा तमाम शरीर कट-फट गया, और मेरे शरीरमे ज़रासा दाग नही आया, सो अब समझ गया। चचा, क्षमा करो।

सूर्य०—क्षमा क्या करूँगा! अपने योग्य काम तू कर रही है। मैं विद्रोही हूँ; मैं ही क्षमाका पात्र हूँ।

पृथ्वी०—उस क्षमाका उपाय मैं करूँगा।—नही चचा, अब नहीं;—मुझे आशीर्वाद दीजिए।

सूर्य०—(आशीर्वाद देकर) यह बालक कौन है?

पृथ्वी०—यह मेरी स्त्री, ताराबाई है!

सूर्य०—बेटी तुम्हीं तारा हो! तुम्हीं वह वीरांगना हो, जिसने अपने हाथोंसे मुजफ्फरको क़ैद किया था! हाय बेटी, जिस देशमे ऐसी वीर स्त्रियाँ पैदा होती हैं, उसी देशमे क्या ऐसे कायर मर्द पैदा होते हैं कि अपने भाईके विरुद्ध युद्ध करनेमे नीच विधर्मी म्लेच्छकी सहायता लेते हैं?—बेटी, तुम बहुत दिन-तक जियो।

सारंग०—तो क्या समझूँ कि यह युद्ध यही पर समाप्त हो गया।

पृथ्वी०—चचाके साथ युद्धकी इतिश्री यहीं हो गई।

तारा—चची कहाँ हैं चचाजी?

सूर्य०—कालीके मन्दिरमे गई थी। (सारंगसे) क्या अभी तक नहीं लौटी?

सारंग०—मालूम नही। (स्वगत) बीच बीचमे वह पगलीसी जान पड़ने लगती है। मेरे साथ उनका बर्ताव विचित्र है। कभी कभी पागलोंकी तरह वह मुझे बेटा कहने लगती है!

पृथ्वी०—यहाँ क्या कालीका मंदिर है?

सारंग०—हाँ है।

पृथ्वी०—अच्छी बात है! चचा, कल हम तुम दोनों वहाँ जाकर माताको पूजा समर्पण करके यह युद्ध समाप्त करेंगे। बलिदानका प्रबंध मैं करूँगा।

सूर्य०—यही हो।

पृथ्वी०—तो आज मैं यहीं रह जाऊँ?

सूर्य०—हाँ!

पृथ्वी०—अच्छा चचा, हमारे आनेके पहले तुम लोग क्या कर रहे थे?

सूर्य०—यही अनाप-शनाप बक रहे थे।

पृथ्वी०—तुम्हारे सिर पर ही जब मुझ जैसा तुम्हारा शत्रु खड़ा था, तब भी तुम इस तरह लापर्वाहीसे बैठे अनाप-शनाप बक रहे थे?

सूर्य०—क्या करूँ पृथ्वी? इसके सिवा और उपाय क्या है?

पृथ्वी०—चलो, भीतर चलें।

(सबका प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—कालीका मंदिर।

समय—सबेरा। बादल घिरे हुए हैं।

[अकेले पृथ्वीराज]

पृथ्वी०—मैया काली! आज करूँगा आपकी
पूजा—नरबलि देकर। जगदम्बे! यहाँ
मेरा या सारंगदेवका, छिन्न हो,
सिर लोटेगा—इन चरणोंमें आपके।
आज महापूजा होगी।—सारंग वह
आता है!

[सारंगदेवका प्रवेश]

हैं चचा कहाँ?

सारंग०— निकला बहुत
खून, हुए कमजोर, पलँग पर हैं पड़े।
मैं आया हूँ यहाँ अकेला ही

पृथ्वी०— हुआ
अच्छा हो यह।

सारग०— पृथ्वी ! बलिका पशु कहाँ
है ?

पृथ्वी०— बलिपशु है ।

सारग०— कहाँ, देख पड़ता नहीं

पृथ्वी०—कोई भी । सारगदेव ! बस बलि यहाँ
तुम हो या मैं ।

सारग०— यह क्या ?

पृथ्वी०— यह विद्रोहकी
आग लगाई, सुलगाई जिसने यहाँ,
वह तुम हो सारग ! प्रतिज्ञा कर चुका
हूँ, कालीके निकट—आज—इस युद्धका
अन्त करूँगा, नरबलि देकर मैं तुम्हे
विद्रोही ! विद्रोह तुम्हारे रक्तसे
शान्त करूँगा ! नरबलि देकर इस घड़ी
देवीको मै तृप्त करूँगा रक्तसे ।—
समझे ? वह बलि, तुम हो, या मै । म्यानसे
खीचो बस तरवार ।

सारग०— हानि क्या है—यही
हो ! खीचो तरवार । (तरवार निकालना)
—याद रखना मगर—
पृथ्वी !—मै हूँ नही तुम्हारा स्नेहसे
विवश, सुकोमल-प्रकृति चचा; यह जान लो ।
दया करूँगा नही । तुम्हारे रक्तकी
प्यासी यह तरवार, छोड़नेकी नही !

पृथ्वी०—दग़ाबाज, तू पहले अपनेको बचा ।

(युद्ध होना। सारंगदेवका पतन।
उसका सिर कटकर दूर जा पड़ता है)

हो समाप्त यह युद्ध, इसीके रक्तसे।
जब मैं असली विद्रोहीका सिर कटा
रक्खूँगा सामने पिताके, और फिर
दोनो घुटने टेक, हाथ भी जोड़कर,
क्षमा-प्रार्थना अगर करूँगा, तब मुझे
निश्चय है, यह खता माफ़ हो जायगी
चाचाकी।

[तमसाका प्रवेश]

तमसा— क्या हुआ! हाय यह क्या हुआ!
किसने हत्या कर डाली सारंगकी!—
पृथ्वी, तूने? पृथ्वी, तूने क्या किया?

पृथ्वी०—नरबलि देकर कालीका पूजन किया।

तमसा—की कालीकी पूजा!—कालीकी नहीं
पूजा की है, पृथ्वी। मेरा ही किया
सर्वनाश यह। निठुर!—जानता है इसे
पृथ्वी तू? सारंगदेव यह कौन है?

पृथ्वी०—जानूँ मैं, सारंगदेव मेवारके
राजघरानेमेंसे ही पैदा हुआ—
राना लाखाका बेटा था।

तमसा— हाय रे
पृथ्वी!—तो अपने कलंकका हाल मैं
कहती हूँ।—सारंगदेव सन्तान है
मेरी।

पृथ्वी०— है ! सन्तान तुम्हारी ?

तमसा— सत्य ही

मेरी है सन्तान । मगर—पृथ्वी, मगर

पिता सूर्यमल नही ।

पृथ्वी०— अरे उन्मादिनी,

क्या कहती है ?

तमसा— पृथ्वी, मै पागल नही ।

—इस कलककी करो जगत्मे घोषणा ।

नगर नगरमे घर घरमे, सबसे कहो ।

अब न डरूँ मैं । सभी गया । अब किस लिए

डरूँ ? जगत्मे । कुछ भी जिसके पास है,

वह डरता है । नही रहा कुछ भी । हुआ

मेरे लेखे आज विश्व मरुभूमि सा ।

सुख, दुख, आशा, प्रीति, सभी कुछ धो गया—

इस भारी बहियामे—मेरे हृदयसे ।

अब न किसीको डरूँ,—प्रलयकी आग, आ,

आ तू—हो प्रज्वलित—जला दे—भस्म कर !

(पागलोंकी तरह प्रस्थान)

पृथ्वी०—(हाथोंसे मुह ढककर)

नारी ! यह क्या सभव है !—जाया हुई

अविश्वासिनी ? नारी ! नारी ! क्या किया—

अरे क्या किया तूने ! तू जो छोड़ दे

सतीधर्म, तो सब बन्धन संसारके

ढीले होंगे—विशृखलता हो जायगी—

धर्म मिटेगा । तुझसे ही जो हो दगा,

अविश्वासिनी तू ही जो हो जायगी,
विश्व बीच विश्वास कहाँ रह जायगा ?
भोजनमे विष, तकियेके नीचे छुरी
छिपी रहेगी; सन्यासी हो जायँगे
सब गृहस्थ होकर विरक्त ससारसे !
कर बाहरके काम, थका, ढीला हुआ
नर आता है अपने घरमे—नित्य ही—
प्राणप्रियाके स्निग्ध प्रेममे दुख सभी,
पाप सभी, अपमान सभी धो डालने।
आकर देखे अगर, प्रेमका स्रोत वह
सूख गया, तो कहाँ जायगा फिर पुरुष ?
नर होकर उद्भ्रान्त, कर्मके चक्रमे
दिग्दिगन्तमे फिरा करे ! तूने उसे
माध्याकर्षणके प्रभावसे बाँध-सा
रक्खा है। हा जाया !–जो विच्छिन्न हो
वह आकर्षण-शक्ति, फिर कहाँ जायगा
पुरुष !–उठेगे सब पवित्र सम्बन्ध ही
इस दुनियासे !–पिता, पुत्र, भाई, सगा—
कौन रहेगा किसका ? नाते ये सभी
मानेगा फिर कौन ? डाह, सन्देह, छल,
गृहविवादसे घर गृहस्थका—नष्ट हो—
खँड़हर, एकाकार, महा मरुभूमि सा
महाशून्य, दारुण मसान बन जायगा !

(प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—रानाका बाहरी बैठकखाना।

समय—प्रातःकाल।

[अकेले रायमल]

राय०—फिर आया है पुत्र आज, रणमे विजय
पाकर, लेकर पत्नीको। है शुभ घड़ी
आज। मगर इस रणमे मैंने रत्न भी
एक गँवाया;—अतुलनीय, अनमोल,—वह
आज्ञाकारी अपना भाई सूर्यमल।—
भूल सकूँगा नही चोट यह जन्मभर !

[पृथ्वीराज और उनके पीछे ताराका प्रवेश]

(रानाको प्रणाम करना)

राय०—जियो बहुत दिन पुत्र !—घोर इस युद्धमे
मैंने पाई विजय, तुम्हारे ज़ोरसे।
—तारा, बेटी, आआ ! तुम जुगजुग जियो।
तुम लाई हो शान्ति उदयपुर-राज्यके
राजवशमे कल्याणी ! अभिमानका
अन्तर जो था पिता-पुत्रके बीचमे
उसे दूर कर दिया। बड़ी तुममे दया
है पुत्रो; इसलिए बुलाये ही बिना
आई हो तुम यहाँ—अयाचित भावसे !

तारा०—पूज्य पिता, मैं अपने ही अधिकारसे
अपने घरमे आई हूँ ।

राय०— आई नहीं,
स्नेहमयी, तुम आश्रय पानेके लिए;
आई हो तुम हँसती—माताकी तरह—
अपराधी निजपुत्र उठाने गोदमे ।
—पृथ्वी, मैं अब बिलकुल ही बूढ़ा हुआ ।
इच्छा है, यह राज्य-भार देकर तुम्हे
अवसर लूँगा । वनमे जा, एकान्त मे,
अपना जीवन शेष बिताऊँगा ।

तारा— कहाँ
जाओगे । मैं जाने ही दूँगी नही ।
तात ! करेंगे हम सेवा सब ही तरह ।
लादेंगे उस तरह बुढ़ापा आपका—
जैसे लादें जड़े जीर्णवट-भारको ।

राय०—पृथ्वी, शास्त्रोंका विधान मैं जानता—
क्षत्रियको है योग्य योग ही अन्तमे ।
मैंने की अवहेला अबतक शास्त्रके
इस विधानकी, शायद कारण है यही,
जो इस घरमे—राजघरानेमे—मचा
इतना झगड़ा, मारकाट, उत्पात सब ।
—समय हो गया सभाभवनमें, अब चलूँ ।

(प्रस्थान)

पृथ्वी०—(स्वगत) मै राना हूँ आज राज्य-मेवारका !
सत्य नही हो सकी चारणीकी कही

वाणी,—"होंगे संग राज्य-मेवारके
राना।" भाई संग! कहाँ तुम आज हो!
अति उदार है हृदय तुम्हारा। आपसे
राज्य छोड़कर, देश छोड़कर, चल दिये,
वनवासी हो गये। तुम्हारे साथ तो
मैंने ही अन्याय किया; रूखा पड़ा।
अपने भुजबलके घमंडसे उस घड़ी
मैंने अत्याचार किया। करना क्षमा।

तारा—सोच रहे हो क्या प्यारे तुम देरसे?

पृथ्वी०—सोच रहा हूँ?—प्रिये, प्रतिज्ञा यह नहीं
की मैंने—जब जो कुछ सोचूँगा, वही
तुम्हें बता दूँगा मैं।

[चोपदारका प्रवेश]

चाप०— आया है यहाँ
दूत सिरोहीसे चिट्ठी लेकर, उसे
क्या आज्ञा है स्वामी—

पृथ्वी०— क्या? चिट्ठी? कहाँ—
किसकी चिट्ठी? देखूँ! यमुनाकी लिखी
चिट्ठी है? (पत्र लेना और पढना। चोपदारका
प्रस्थान) जो सोचा था—

तारा— यह पत्र है
किसका प्यारे?

पृथ्वी०— तुमको इसकी क्या पड़ी—
तारा! (वेगसे प्रस्थान)

तारा— जबसे अन्त लड़ाईकाहु आ
तबसे प्रियतमका स्वभाव ऐसा हुआ।—
बात बातमे आगभभूका हो उठे।
कभी ताकते ऐसो तीखी दृष्टिसे,
डर जाती हूँ; आँखे लेती हूँ झुका।
ऐसा यह क्यों हुआ ? मात जगदम्बिके—
क्यों यह ऐसा हुआ।—समझ पड़ता नही !

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य।

स्थान—गभीरा नदीका किनारा।

समय—सन्ध्याकाल।

[उदास वेषसे अकेली तमसा]

तमसा—गया, गया—सब गया। जो नहीं था, वह नहीं हुआ। जो था, वह चला गया। स्त्रीका धर्म गया, पतिका प्रेम गया। अन्तको, जिसके लिए इतना षड्यन्त्र रचा, इतनी चेष्टा की, वह भी गया।—इतने दिनोंमे समझी कि अधर्मकी राहमे सुख नही होता। अधर्मका दण्ड एक-न-एक दिन मिलता ही है। वह चाहे इस लोकमे मिले और चाहे परलोकमे मिले। गया, गया, सब गया। फिर मैं ही क्यो पड़ी रहूँ। आज इस गंभीराके प्रवाह मे फाँद पड़ूँगी। उसके बाद ?—परलोकमे नरककी आगमें जलूँगी ? जलूँ ! उससे मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जिन्दगीमे ही नरककी यन्त्रणा भोगना शुरू हो गया है।—सारग ! सारंग !—क्यों तुझे उस दिन मैंने देखा ?—ममताको दबाकर

लोकलज्जाके भयसे तुझको उस दिन नदीके प्रवाहमें बहा दिया था; किसने मेरा सर्वनाश करनेके लिए तुझे बचाया ? क्यों तू उस दिन मेरे सामने आया था ?—आहा ! आँसू-भरी कातरदृष्टिसे तू मुझसे खानेको माँग रहा था, और यह नहीं जानता था कि यही मेरी मा है ! अपनी जिन्दगीभरमे तू इस बातको जान भी नहीं सका । सोचा था, चित्तौरके सिंहासन पर तुझे बिठाकर वह बात कहूँगी । वह सुयोग नहीं मिल सका । सारंग ! सारंग ! मेरे सारंग ! मेरे प्राणोंसे प्यारे बच्चे !—ओः—

[गाते-गाते एक फकीरका प्रवेश]

धुन कव्वाली ।

'मेरा-मेरा' कहता फिरता; यह मेरा, वह मेरा है ;
अपना लिये रहो तुम भाई, लेना मत जो मेरा है ।
मेरा घर, मेरा दरवाजा 'मेरा' मुझको मीठा है ;
'मेरे' का ही सब झगडा है, 'मेरे' की ही चिन्ता है ।
मेरे लड़के-लड़की, मेरी जोरू, मेरी माता है,
मेरा पिता, सभी कहते, पर साथ न कोई जाता है ।
इतना प्यारा तन है, वह भी, छोड यहींपर जाना है ;
मेरा कहिए किसे ? जगत्में कोई नहीं किसीका है ।

तमसा—यह भी तो ठीक है । मैं किसकी हूँ ?—कौन मेरा है ?—इस संसारमें कौन किसका है ? किसे अपना कहकर पुकारती हूँ ? बड़े आग्रहसे, बड़े जोशसे किसे छातीसे लगा रखते हैं, छातीसे लगा कर भी तृप्ति नहीं होती; जिसे अपने प्राणोंके साथ रखना चाहते हैं, उसे जैसे ही मृत्युने अपना कालदण्ड छुआ दिया, वैसे ही वह हमारा कोई भी नहीं रहा—एकदम गैर हो गया !—

एकदम ग़ैर हो गया !—कोई भी नहीं रहा। वह माया-मोहके फन्देको तुड़ाकर चला जाता है, प्रेम भूलकर चला जाता है, निर्दय भावसे न जाने कहाँ चला जाता है—फिर नहीं देख पड़ता, फिर देखनेको नहीं मिलता ! स्वर्ग-पृथ्वी—पाताल खोजने पर भी फिर एकबार उसे नही देख पाते। कैसा मनुष्य-जन्म बनाया है दयामय ? (लंबी सांस लेना)

[दो सैनिकोंका प्रवेश]

१ सैनिक—पकड़ लिये गये।

२ सैनिक—पकड़ नहीं लिये गये। सर्यमलने आप ही अपनेको पकड़ा दिया।

१ सैनिक—आप क्यों पकड़ा दिया ?

२ सैनिक—कौन जाने। जब पकड़ जानेसे मौतका होना निश्चित जाना था, तब अपनेको क्यों पकड़ा दिया—यह बेशक एक कठिन समस्या है।

१ सैनिक—ना जी। सूर्यमल, हज़ार हो, रानाके भाई हैं। राना उन्हे छोड़ देगे।

२ सैनिक—ऊँहू: ! राना इस तरहके आदमी नहीं है। न्याय-विचारके समय वह भाई या जातिवालेका कुछ भी खयाल नहीं करते।

१ सैनिक—सूर्यमलका न्याय-विचार कब होगा ?

२ सैनिक—कल।

(दोनोंका प्रस्थान)

तमसा—अपनेको पकड़ा दिया ! अन्तको पकड़ा दिया !—इसमे आश्चर्य ही क्या है ? ये लोग नही जानते कि उन्होंने आप

अपनेको क्यों पकड़ा दिया। मै जानती हूँ। उन्होने मनके क्षोभसे, यन्त्रणासे और लज्जाके मारे अपनेको पकड़ा दिया है। इसी कारण वह अपनी इच्छासे मौतको गले लगाने जा रहे है।—अच्छा, मरनेसे पहले एक अच्छा काम करके क्यो न देखूँ, क्या होता है।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—रानाकी सभा।

समय—सवेरा।

[सिंहासन पर रायमल्ल बैठे हैं। सामने मुसाहब और नौकर-चाकर हैं। पास ही पृथ्वीराज है। सामने कैदी सूर्यमल खड़े है]

राय०—सुनो सूर्यमल ! आज, इस समय, तुम नहीं
मेरे भाई,—दण्डनीय हो ! शत्रु हो !
दगाबाज सेनापति, विद्रोही प्रजा-
साधारण हो। विद्रोहीको आज मै
दूँगा समुचित दण्ड !

सूर्य०— बस, यही ठीक है।
महाराज ! मै वही दण्ड चाहूँ।

राय०— तुम्हें
कहना है ?

राय०— ना, कुछ भी कहना है नही।
मृत्यु—सूर्यमल !—विद्रोहीका दण्ड है;
यह तुम जानो !

सूर्य०— मुझे खूब मालूम है ।
राय०—यही दण्ड मैं तुमको देता हूँ ।
पृथ्वी०— पिता,
हाथ जोड़कर, क्षमा—वचाकी ओरसे
मैं माँगूँ; अपराध क्षमा कर दीजिए !
राय०—पृथ्वी ! यद्यपि स्नेहशील हूँ मैं बडा,
लेकिन है इस जगह बडा कर्त्तव्य ही
भ्रातृ-स्नेहसे । सिंहासन पर बैठकर
पक्षपात—अविचार—करूँगा मै नहीं;
ठीक विचार करूँगा । पृथ्वी ! यह कठिन
राजदण्ड है; क्षमा जानता ही नही ।—
नही मानता किसी निकट-सम्बन्धको ।
कोई जिसमें नहीं कहे—"वह वज्रसा
अपराधीके सिर पर पडता है, फकत
आशीर्वाद बरसता अपनी जातिके—
बन्धुवर्गके मस्तक पर ।"—तो सूर्यमल,
जाओ । इस नव उज्ज्वल प्रात:कालमे
भीगेगी वधभूमि तुम्हारे रक्तसे ।
सूर्य०—बडी कृपा की रानाजीने !—ले चलो
वध्यभूमिमे ! चलनेको तैयार हूँ,
चलो सिपाही । (पहरेदारोंके साथ जाना चाहते हैं)
राय०—(सिंहासनसे नीचे उतरकर)
प्यारे भाई—सूर्यमल—
जाते हो तुम कहाँ अभी, अपने सगे
भाईसे भी बिना मिले ?—भाई, सगे

प्यारे भाई !—ज़रा उठाओ तो सही
नीचे मुँहको; देखो मेरी ओर तो—
अब मैं राजा नहीं।—सूर्यमल—इस समय—
मै भाई हूँ वही तुम्हारा ! हृदयसे
एकबार तो लग जाओ अन्तिम समय ।
—इसी गोदमे मैंने तुमको स्नेहसे,
आदरसे दुलराया;—पाला भी तुम्हे
मेरे भाई ! आज तुम्हे इस हाथसे
मुझको देना पड़ा मृत्युका दण्ड भी !—
विधि-विडम्बना !

सूर्य०— विधि-विडम्बना ही इसे
समझूँ ! इसको भाईजी, तुम क्या करो ?

राय०—सूर्य ! सूर्य ! तुम वही सूर्यमल क्यो नहीं
रहे ?—वही औदार्य, सरलता, स्नेहसं
पूर्ण सूर्यमल ? तुमने मुझसे क्यों नही
कहा—तुम्हे राजा होने का चाह है।
देता तुमको अनायास ही राज्य मैं

सूर्य०—भाई, करना क्षमा,—मृत्युके बाद तुम
करना मुझको क्षमा । भूल जाना सभी
अपराधोको—मुझे मूर्ख भाई समझ।
भाई, मै हूँ मूढ़, समझ मुझमे नही ।

राय०—नहीं नही, यह काम तुम्हारा तो कभी
नहीं सूर्यमल ।—कहो कहो, किसने तुम्हे
यह सलाह दी ? तुम्हे शिखण्डी-सा बना—
आगे करके—किसने मेरे हृदयमे

मारा यह विषबुझा बाण ? वह कौन है ?
कहा—

सूर्य०— कहूँगा नहीं; न कहनेके लिए
कहना भाई आज।

राय०— क्या किया, क्या किया,
भाई तुमने ?—हाय, क्या कहूँ ? हृदयसे
उठा दिया विश्वास तुम्हारे इस घृणित
नीच कार्यने। देखूँ नीलाकाशको;
शंका होती, उसके भीतर वज्रकी
सेल छिपी है। देखूँ सोता स्वच्छ, तो
होता है सन्देह—जहर उसमे मिला
है शायद। संगीत सुनूँ, सोचूँ—छिपा
इसमे कुछ विद्रूप।—सूर्यमल!—क्या किया
यह मेरे इस बूढ़पनमे!

सूर्य०— आप सब
भूल जाइए, इसे बुरा सपना समझ।
यही सोचिए, धूमकेतु आकाशमे
आकर जाता चला; किन्तु चिरदिन रहे
स्थिर सारे नक्षत्र वहीं पर।—सोचिए,
भूमिकम्पका विप्लव क्षणभरके लिए
आता, जाता चला; किन्तु पृथ्वी रहे
हरी-भरी, परिपूर्ण शान्तिसे, धैर्यसे
पहलेहीकी तरह।—करो, भाई, क्षमा।
बिदा करो अब मुझको।

राय०— भाई सूर्यमल !
क्षमा कर दिया मैंने । यों पाओ वहाँ
ईश्वरसे भी क्षमा मृत्युके बाद तुम ।
[भीड़ फाड़कर तमसाका निकलना]
तमसा—कहाँ जा रहे ! जाना मत । ठहरो ज़रा
देव—
[सूर्यमल्लका स्तंभित भावसे खड़े हो जाना]
खड़े हो दम भर, (रायमलके पैरो पर गिरकर)
रानाजी सुनो !
कुछ कहना है ।
सूर्य०— यह स्त्री है उन्मादिनी,
सुनो न इसकी बात ।
तमसा— नहीं, राना-प्रभो—
सुनना होगा ।
सूर्य०— उसके पहले ही मुझे
मृत्युदण्ड दो ।
मसा— नहीं, सुनो—तुम भी सुनो ।—
हाँ रानाजी, सुनिए । दोषी है नहीं—
स्वामी । दोषी मैं हूँ । यह विद्रोहकी
आग जलाई मैंने ही । दी मन्त्रणा
मैंने । मैंने बुलवाया चित्तौरमे
मालवपतिको । मेरा ही षड्यन्त्र है—
मेरा ।
राय०— तेरा ?

तमसा— हाँ, मेरा ही। आप यह
पूछेंगे—मैंने कुचक्र यह क्यों रचा?
क्या पूछेंगे? सुनिए, मैंने क्यो रचा।

सूर्य०—महाराज मत सुनिएगा! मैं प्रार्थना
करता हूँ।

तमसा— सुनना ही होगा। मैं स्वय
अपना घोर कलक जगत्के सामने
प्रकट करूँगी, विष उगलूँगी; पापको—
रानाजी—स्वीकार करूँगी। जानते
होंगे तो सारगदेवको? पुत्र था
वह मेरा! पर पिता नही यह सूर्यमल।

राय०—सच है! औरत पागल है!

तमसा— राना सुनो—
पागल हूँ मैं, लेकिन जो कुछ कह रही
हूँ, वह पागलका प्रलाप बिलकुल नही।
—उसे बनानेको राना मेवारका
मैंने की थी गुप्त मन्त्रणा यह।—मगर
व्यर्थ हुई वह। पृथ्वी जो इस युद्धमे
पहुँच न जाता, तो हो सकती थी सफल।
आप जानते हैं, पृथ्वीको यह ख़बर
भेजी किसने? किसने आकर युद्धमे
पक्ष आपका लेनेका अनुरोध कर
पत्र लिखा था पृथ्वीको? इन सूर्यमल
ने ही यह सब किया।

राय०— सूर्यमलने ! ! ! स्वयं
विद्रोहीने ! ! ! क्या यह सच है सूर्यमल ?—
तमसा—सच है। यद्यपि इस कुचक्रमे फँस गये
थे यह तो भी समझी अपनी भूल जब,
पत्र एक तब लिखा भतीजेको;—यहाँ
आकर करनेको सहायता आपकी।
पृथ्वी०—यह सच है। मैं भूल गया, अबतक नहीं
कहा आपसे पिता।
तमसा— सत्य सब खुल गया।
विद्रोही हूँ मैं यथार्थमे। दीजिए
मुझे मृत्युका दण्ड।
राय०— न अबलाको दिया
जा सकता है मृत्युदण्ड।
सूर्य०— तमसा, यहाँ—
मेरे मरनेके पहले ही—क्यो कही
यह कलंककी बात ?
तमसा— क्यों कहो ! अभीतक,
जीवनभरमे, नही किया कोई कभी
पुण्यकर्म,—सो आज कर लिया। मैं क्षमा
चाहूँ—यह सोचना नही स्वामी। मुझे
इसका भी अधिकार नही अब रह गया।
स्वार्थसिद्धिके लिए जन्मसे छल किया;
ढोंग प्रेमका रचा। न मैं चाहूँ क्षमा।
पुण्य किया था कभी नही; जाना न था
सुख उसका; इसलिए आज देखा उसे।

देखा, उसमे सुख है—स्वामी, बड़ा सुख;—
पापकर्ममे मिले सुखोंसे भी अधिक
वह सुख है। अब जीवनके इतिहासका
खुला नया अध्याय। तुच्छ इतना—अहो—
स्त्री-जीवन है! राजदण्ड इतना घृणित,
वह भी उसको छूनेमे करता घृणा!
उस जीवनको यथाशक्ति मैं आजसे
पुण्यकर्ममे और भलाई मे लगा
दूँगी। (प्रस्थान)

राय०— बन्धनमुक्त सूर्यमलको करो।
(सबका जाना)

चौथा दृश्य।

स्थान—राना रायमलका अन्तःपुर।

समय—सबेरा।

[शूरतान और उनकी रानी]

शूर०—तुमसे मै बराबर यही कहता चला आरहा हूँ रानी, कि चुपचाप बैठी रहो; घटनाये आप ही ठीक-ठीक सिलसिलेवार होती चली जायँगी। देखो, वही हुआ कि नहीं। घटनाओका सिलसिला ऐसी नर्मीके साथ होता चला जा रहा है कि इसके बाद क्या होगा, सो कुछ समझ नहीं पड़ता।

रानी—और क्या होगा?

शूर०—मैं चित्तौरका राना भी हो सकता हूँ, और चाहूँ तो तुर्कोंका सुलतान भी हो सकता हूँ। वह देखो, टोड़ा दुश्मनोंके

हाथसे मिल गया; इस समय मैं फिर वही पहलेका राजा हूँ । इसके सिवा लड़कीके लिए एक ऐसा वर मिल गया कि मैं एक ही साँसमें एकदम राना रायमलका समधी बन गया । इसके सिवा तुमने सुना है, रानाने ढिंढोरा पिटवा दिया है कि वह एक महीने-के बाद पृथ्वीको राजकाज सौंपकर युवराज बना देंगे । तो इसका फल यह ठहरा कि पृथ्वीराज हुए महाराना, तारा हुई महारानी—और मैं एक ही दौड़में महारानाका ससुर हो गया।

रानी—इस गौरवके लिए अहंकार करनेमें तुम्हे लज्जा नहीं आती ? इस पराये दिये राज्यका सुख भोगनेकी अपेक्षा तो वनवासी रहना अच्छा ।

शूर०—इस स्त्रियोंकी जातिको किसी तरह सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता । जब वनमें रहता था, तब उसमें 'मिनमिन' लगी हुई थी; और आज समधी की हैसियतसे न्यौता पाकर रानाके यहाँ चित्तौरमें आकर राजभोग खा रहा हूँ, तो उसमें भी 'मिनमिन' लगी हुई है । नतीजा यह निकला कि मिनमिन किये जाना ही स्त्रीजातिका स्वभाव है,—"यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।" अच्छा, यह पराया दिया राज्य न हो चूल्हेमें जाय—यह राजभोग चूल्हेमें जाय । लेकिन ताराको क्या इससे अच्छा वर मिल सकता था ?

रानी—यह वर तो विधाताने ही जुटा दिया है ।

शूर०—योग्य व्यक्तिको विधाता इसी तरह भेज देते हैं ।

रानी—तुम तो इस तरफसे बिलकुल ला-पर्वाह थे ।

शूर०—और तुमने तो तत्पर ही होकर सब काम किया था । वचन-बहादुर बनकर एक जयमल-विभ्राट् तो खड़ा कर ही दिया था ।

रानी—क्यों, वह क्या बुरा था ?

शूर०—बुरा ! उसकी अपेक्षा, वह जो साँड़ खड़ा है, उससे ताराका ब्याह कर लेना अधिक संभव था । तुमने तो बहुत कोशिश की थी, पर उसने कहाँ माना !

रानी—ब्याह करती या नहीं सो तुम देखते, अगर वह मोहित-सिंह बीचमें विघ्न न बन जाता ।

शूर०—एँ, स्त्रियोंकी जाति बिलकुल ही बुद्धि नहीं रखती । अगर स्त्रीके कठिन सिरपर गौतममुनिके तर्कशास्त्रको खींच मारिए तो वह न्यायशास्त्र ही चूर्ण हो जायगा, स्त्रीके सिरका कुछ नहीं हो सकता ।—मोहितसिंहने क्या किया ! वह तो जयमलके आनेके पहलेही चला गया था ।

रानी—चला गया था सही; लेकिन फिर मुझे मालूम हुआ कि वह ताराके हृदयमें अपनी मूर्ति अंकित करके छोड़ गया था ।

शूर०—हाँ ! तुम्हारे हृदयमें तो नहीं अंकित कर गया ?—(गंभीर भावसे)—रानी, यह न होता ।

रानी—क्या न होता ?

शूर०—तारा मोहितसिंहसे भी ब्याह न करती, जयमलसे भी ब्याह न करती । मैं सदासे देखता आ रहा हूँ, उसकी दृष्टि इसी चित्तौरके सिंहासन पर थी ।—तारा जानती थी कि एक-न-एक दिन सिंहासन पर पृथ्वीराज ही बैठेंगे । यह क्या बच्चोंका खेल था । तारा मेरी ही तो लड़की है । मैं बराबर इधर ध्यान लगाये हुए था । इसीसे अबतक चुप था ।

रानी—तुमने इसमें क्या किया ? घटनाओंका सिलसिला ही कुछ ऐसा आ बैठा कि यह सब होगया ।

शूर०—रानी ! जो लोग झींगा मछली पकड़ते हैं वे पानीको उथलपुथलकर—कीचड़ घोलकर—उसकी दुर्गन्ध फैलाकर जाल घुमाते फिरते हैं। लेकिन जो लोग रोहू मछली पकड़ते हैं वे जाल डालकर चुप साधे बैठे रहते हैं।—अब चलो, राजभोगका यथायोग्य उपयोग किया जाय—सूक्ष्म बुद्धिका सञ्चालन करनेसे स्थूल शरीर एकदम शिथिल हो पड़ा है।

रानी—(हँसकर) विधाता ने तुम्हें पेटू ब्राह्मण न बनाकर क्षत्रिय क्यो बनाया ?

शूर०—विधाताकी ऐसी ही और भी दो-एक भूले मैं तुमको दिखा दूँगा। केवल एक अभी दिखाये देता हूँ—यही कि अगर वह तुमको स्त्री न बनाकर राजा पुरुके सेनापतिके रूपमे उत्पन्न करते, तो शायद राजा पुरु सिकन्दरशाहसे युद्धमे न हारते। चलो।

(दोनोंका प्रस्थान)

[दूसरी ओरसे पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—मैंने सुनना नहीं चाहा ! एकाएक कानमे भनक पड़ गई। समझ गया, सब समझ गया। पानीकी तरह सब साफ़ हो गया। मैं इन लोगोकी सांसारिक उन्नतिके मार्गकी केवल एक सीढ़ी हूँ ?—षड्यन्त्र है ! षड्यन्त्र है ! नहीं। यही कैसे कहूँ ? मैंने तो आप ही अपनेको धरवा दिया। मोहितसिंह कौन है ? यह मोहितसिंह तो ताराका प्रणयी था।—और भी कितने प्रणयी होंगे, कौन जाने !—यह न होता तो जयमल ताराके शयनागारमे प्रवेश करनेका साहस करता ? यह न होता तो तारा एक राज्यके लिए अपनेको बेचती ? चाचीके मुखसे वह भयानक स्वीकारकी कहानी सुननेके बादसे स्त्रीजातिके

सम्बन्धमे ऐसी किसी बात पर अविश्वास करनेको जी नहीं चाहता। सब कुछ सभव है! देखता हूँ, ताराका इतिहास भी ठीक उसी इतिहाससे मिलता है!—सभी स्त्रियोंका क्या यही हाल है? वे केवल स्वामीके धन, मान और सामर्थ्यके लिए ही उसका आदर, आग्रह और सेवा करती हैं? घृणा पैदा हो गई है। इस स्त्रीजाति भर पर घृणा पैदा हो गई है।—लो, वह तारा आ रही है।

[ताराका प्रवेश और संकुचित भावसे द्वारपर खडे रहना]

पृथ्वी०—क्या चाहती हो?

(तारा चुप रहती है)

पृथ्वी०—चुप क्यों हो?

तारा—तुम क्या कहीं जाते हो?

पृथ्वी०—हाँ, जाता हूँ—सिरोही राज्यको—

तारा—क्यों! एकाएक?

पृथ्वी०—क्यों! (स्वगत) कह दूँ, क्या हर्ज है। (प्रकट) उस दिन यमुनाकी चिट्ठी आई है, जानती हो?—यमुनाने मुझे बुला भेजा है।

तारा—(सिर झुकाये) मैं भी साथ चलूँगी।

पृथ्वी०—नहीं।

तारा—क्यों नाथ?

पृथ्वी०—सब बाते सुननेसे कोई लाभ नहीं है, तारा।

तारा—(कुछ चुप रहकर) नाथ! एक दिन था, जब आप सब बातें खुलासा करके मुझसे कहते थे।

पृथ्वी०—वह दिन अब नहीं है, तारा।

तारा—क्यों स्वामी ? मैंने क्या दोष किया है ?

पृथ्वी०—(स्वगत) ठीक इसी तरह । चाची भी ठीक इसी तरह कहती थीं।

तारा—मैंने इस पर लक्ष्य किया है नाथ कि एक महीनेसे मेरे ऊपर तुम्हारा वह प्रेम, वह निर्भर, वह विश्वास नहीं है ।

पृथ्वी०—कुछ भी सदा नहीं रहता, तारा ।

तारा—रहता है । स्वामी और स्त्रीका सम्बन्ध सदा रहता है। इस नाशशील संसारमे यही एक सम्बन्ध चिरस्थायी है—पर्वतकी तरह अटल है, समुद्रकी तरह गहरा है, नक्षत्रकी तरह उज्ज्वल है। यह संबध इस लोकका है, यह संबंध परलोकका है ! यह सम्बन्ध मिटता नहीं प्रभो ।

पृथ्वी०—ओः, कैसी भयंकरता है !

तारा—मैंने अगर कुछ अपराध किया हो, क्षमा करो। तुम मेरे प्रभु हो, मैं तुम्हारी दासी हूँ। मैं पग पग पर तुम्हारी अपराधिनी हूँ।—क्षमा करो ।

पृथ्वी०—(स्वगत) चाची भी ठीक इसी तरह कहती थीं।—बात बिलकुल मिलती है। (प्रकट) तारा ।—(लंबी सांस)

तारा—(पैरोंपर गिरकर) बोलो, मैंने क्या दोष किया है ?

पृथ्वी०—उठो तारा, कहता हूँ तुमने क्या दोष किया है। (स्नेहपूर्वक ताराके दोनों हाथ पकड़कर)—तारा ! तुमने मेरे साथ ब्याह क्यो किया ?

तारा—तुम तो सब जानते हो ।

पृथ्वी०—(हाथ छोड़कर, कठोर स्वरसे) जानता हूँ—सब जानता हूँ। और तुम जिस बातको जानती हो कि मैं नहीं जानता, उसे भी जानता हूँ ।

तारा—क्या जानते हो ?

पृथ्वी०—तुम्हारे पिछले जीवनका हाल। उस बातको जाने दो!—तारा! तुमने चाहा था अपने पिताका छिना हुआ राज्य, सो तुम पागई। तुमने अपने जो दाम माँगे थे सो पागई। और क्या चाहती हो? तुम्हारे मा-बापने तुम्हारे रूपका फंदा डाल रक्खा था रानाका समधी होनेके लिए। उस फंदेमे पड़कर अबोध बेचारा भाई जयमल अपनी जानसे गया; और फिर उसी फदेमे जाकर मैं फँस गया।—तुम सबने जो चाहा था, वह मिल गया। और भी कुछ चाहती हो? कहो, देता हूँ।—हा ईश्वर!—स्त्रीके रूपका कैसा फंदा बनाया है! (प्रस्थान)

तारा—नाथ! इस बातको न कहकर कलेजेमें कटारी मारकर ही क्यों नहीं चले गये?—अहो भगवन्।—यहाँतक!

(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—पाभूरावका विलास-भवन।

समय—रात्रि।

[पाभूराव और मुसाहब लोग।
सामने नाचनेवालियाँ]

पाभू०—वाहवाह वाहवाह! नाचो और नाचो! रूपका फुहारा छुड़ा दो।

सब मुसा०—(साथ ही साथ) रूपका फुहारा छुड़ा दो।

पाभू०—स्वर्गराज्यको मनुष्यलोकमें ले आओ। जीवनका सारांश है सौन्दर्य, और सौन्दर्यका सारांश है सुन्दरी।—ए ढालो।

सब मुसा०—ए ढालो।

पाभू०—स्त्री शब्दसे १५ से लेकर २० वर्ष तककी प्रायः सभी स्त्रियोंका बोध होता है। केवल अपनी औरत और मा-बेटी-बहन-बहू-बुआ वगैरह सम्बन्धकी औरतोंको छोड़कर।

सब मुसा०—हाँ हाँ, अमरकोषमे ऐसा ही लिखा है।

पाभू०—लिखा है?—हिः हिः हिः।

सब मुसा०—हिः हिः हिः!

पाभू०—कैसी चीज़ है, जानते हो!—बिलकुल एक ही ढगकी!

सब मुसा०—बिलकुल, राजासाहब।

पाभू०—किन्तु स्त्री चीज़ कैसी है, जानते हो? मेरी समझमे तो पत्रे (पञ्चाग) की तरह है। कम-से-कम सालभरके बाद तो जरूर ही बदल डालना चाहिए। हिः हिः हिः!

सब मुसा०—हिः हिः हिः!

१ मुसा०—देखता हूँ, आज तो राजासाहबके मुँहसे रसिकताका फुहारा छूट रहा है।

२ मुसा०—शराबके बिना कहीं यथार्थ रसिकता हो सकती है दादा।

पाभू०—हाँ—तो और ढालो।—गाओ पृथ्वीकी अप्सराओ—

मुसाहबों और नाचनेवालियोंका गान।

(तर्ज थियेटर)

खोलो खोलो बोतल यार, ढालो ढालो ढालो ढालो।
तेज शराब रूपके संग, अच्छी लगती, जमता रग;
बढने लगती नई उमग, बस बस, जल्दी ढालो ढालो।

सरस, लाल, ओठोंसे बढ़कर, मदिरा स्वर्णपात्रमे भरभर,
पियो, जियो जब तक धरती पर, चुक जावे तो और मँगालो ।
परी जमाल बगलमें पावें, मदिरा, मुँहसे तुझे लगावें,
रगरगमें लालसा-अग्निको, धीरे धीरे बालो बालो ।
हम स्वरूपकी आहुति डालें, जले द्विगुण कामानल उससे ।
हम उर्वशी काम सागरसे, निकलीं, तुम विष हो; घर घालो ।
हम आँधीसी चलें यहाँ पर, तुम बढ़ियासी आओ बढ़कर ;
सर्वनाश बिन किये यहाँसे, बाहर पैर कभी न निकालो ।

[चन्द्रावका प्रवेश]

पाभू०—चन्द्रराव ? क्या ख़बर है ?

चन्द्र०—बड़ी अच्छी ख़बर है राजासाहब, बड़ी अच्छी ख़बर है।

पाभू०—कैसे !—कैसे !

चन्द्र०—पृथ्वी—

पाभू०—फिर "पृथ्वी" । हैरान कर डाला । "पृथ्वी" के सिवा क्या और कोई बात ही नहीं है ?

चन्द्र०—यही तो जान पड़ता है ! राह-घाटमे, जंगलमे, मैदानमे, जहाँ जाता हूँ, केवल पृथ्वीका ही नाम सुन पड़ता है । कुल-कामिनियोंके मुँहसे यही नाम सुन पड़ता है; चारण-कवियोंके मुँहसे इसी नामकी महिमा सुन पड़ती है; सभाओंमे, देव-मन्दिरोंमे—

पाभू०—रहने दो, रहने दो । उसको क्या हुआ, कह डालो । वह मर गया—यह कह सकते हो ?

चन्द्र०—जी, वह ऐसा आदमी ही नहीं है। बल्कि दो सप्ताहके बाद उसका अभिषेक है। राना अब राजकाजसे छुट्टी ले रहे हैं। अब पृथ्वीराज ही राना होगा।

पाभू०—पृथ्वी राना ?

चन्द्र०—क्यों, रानाका लड़का तो राना होगा ही; इसमें आपने आश्चर्यकी बात क्या देखी ? आपको काहेका दुःख है ?

पाभू०—पृथ्वीने मेरे मुँहका कौर छीन लिया, और तुम कहते हो मुझे दुःख काहेका है ?—दग़ा ! धोखा !—सग लापता है, जयमल मर गया, पृथ्वीराज देशनिकालेका दण्ड पाये हुए है। इससे मैं ही रानाका उत्तराधिकारी क्या नहीं था ?—दग़ा ! चोरी ! धोखेबाज़ी !—इसीलिए तो मैंने इतने दिनों तक रानाकी लड़कीको खिलाया-पिलाया था। आज मैं उसको मारकर घरसे बाहर निकाल दूँगा।—ए कौन है ?

[दो चोपदारोंका प्रवेश]

पाभू०—जाओ, रानीको यहाँ अभी ले आओ। सिर्फ ले ही न आओ, कुत्तेकी तरह जजीरसे बाँधकर ले आओ।

चोप०—जो हुक्म राजासाहब। (प्रस्थान)

चन्द्र०—राजा साहब !

पाभू०—चुप रहो !

(मुसाहब लोग चुप रहते है)

चन्द्र०—तो मैं जाता हूँ राजासाहब। (प्रस्थान)

पाभू०—सब षड्यन्त्र है !—रानाने लड़केको देशसे निकाल दिया था। अब उसे बुला भेजा सिर्फ मुझे राना-पदसे वञ्चित करनेके लिए।—यहाँतक जुआचोरी !—ढालो—ए ढालो।

मुसा०—ए ढालो।—गाओ गाओ।

(नाचनेवालियाँ गाती हैं)

खोलो खोलो बोतल यार,
ढालो ढालो ढालो ढालो।

इत्यादि।

पाभू०—ए चुप रहो।

मुसा०—चुप रहो।

पाभू०—मैं आज बदला लूँगा ! बदला लूँगा। (टहलता है) सब जुआचोरी है !

[जंजीरसे बंधी हुई यमुनाका प्रवेश]

चोप०—राजासाहब ! ले आये।

पाभू०—ले आये, अच्छा किया—ए यमुना !

(यमुना चुप रहती है)

पाभू०—मैं आज तेरा अपमान—तेरी बेइज्जती—करूँगा।

यमुना—अपमान और बेइज्जती तो रोज ही करते हो। बाकी क्या रक्खा है ?

पाभू०—जो कुछ बाकी रक्खा है, वह आज करूँगा। आज तुझे जूते मारकर घरसे बाहर निकाल दूँगा।

यमुना—यही करो। यह आफत दूर हो जाय। यही करो ! अब और नहीं सहा जाता।

पाभू०—ना, तुझे सिर्फ राज्यसे निकाल देनेसे कुछ न होगा। तुझे शिकारी कुत्तोंसे नुचवाऊँगा।

यमुना—मेरा अपराध क्या है महाराज !

पाभू०—तेरा अपराध यह है कि रायमल तेरा बाप है और पृथ्वीराज तेरा भाई ।

यमुना—यही अपराध है ! इस अपराधको मैं स्वीकार करती हूँ, राजासाहब ! इसके लिए जो चाहे सज़ा दो, मैं उसे सिर-आँखों पर लेनेको तैयार हूँ। वही इस जीवनकी सान्त्वना और अपमानमें अहंकार है। मैं जो तुम्हारा इतना अत्याचार सहती हूँ सो यही समझ कर कि मैं रानाकी लड़की और पृथ्वी-राजकी बहन हूँ। मैं यही समझकर अपने अपमानको अपमान नहीं समझती कि मैं जब चाहूँ तब इस अपमानका प्रतिकार कर सकती हूँ। लेकिन प्रतिकार करती नहीं; क्योकि तुम चाहे जैसे हो, मेरे पति हो । प्रतिकार नहीं करती, इस लिए कि मैं हिन्दूरमणी हूँ। हिन्दूधर्म यही शिक्षा देता है कि पति पाजी, पापी, पतित होने पर भी स्त्रीका देवता है। इसीसे अबतक इतना सहा है; अपमानको सिर झुकाकर स्वीकार किया है। छाती फट गई है तो भी सहा है, आँसुओंसे छाती भीग गई है तो भी सहा है। नहीं तो क्या तुम समझते हो कि मैं मुट्ठीभर अन्नके लिए तुम्हारे द्वारपर पड़ी हुई हूँ ?—मैं—जिसके पिता राना रायमल हैं, जिसका भाई जगत्प्रसिद्ध पृथ्वीराज है—वह हूँ।

पाभू०—हाँ ! तेरा घमंड अभी चूर किये देता हूँ। मैं अगर यहाँ तुझे लातोंसे मारूँ तो तेरा बाप क्या कर सकता है ? और तेरा भाई ही क्या कर सकता है ?

(बाल पकड़कर लात मारना, यमुनाका गिर पड़ना)

[पाच सिपाहियोंके साथ वेगसे पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—पाभूराव ! यह क्या ?

(गर्दन पकड़ना । मुसाहबोंका चिल्लाना और भागना)

पाभ०—कौन ? हैं पृथ्वीराज ? छोड़ो।

पृथ्वी०—(छोड़कर तलवार निकालकर) निकाल तरवार।

पाभ०—एँ, तरवार क्यों निकालूँ ? ए—कौन है ?

पृथ्वी०—नामर्दकी तरह चिल्लाता क्यों है ? मर, वीरोंकी तरह मर। आज तेरे जीवनका अन्तिम दिन है। क्या ! तरवार नहीं निकालेगा ? (गला पकड़कर धक्का देना। पाभूरावका गिरना। पाभूरावकी छाती पर पृथ्वीका बैठना) पाभूराव, यही तेरी आखिरी घड़ी है। इष्टदेवका नाम ले। (तरवार तानना)

पाभू०—(कातर स्वरसे) क्षमा करो पृथ्वीराज !

पृथ्वी०—क्षमा माँग यमुनासे—उसके पैर पकड़कर क्षमा माँग कापुरुष !

पाभू०—यमुना ! पैरों पड़ता हूँ, क्षमा करो।

यमुना—मँझले दादा ! यह चाहे जैसे हों, मेरे पति हैं। अभी इन्हें छोड़ दो।

पृथ्वी०—(छोड़कर स्वगत) एं ! देखता हूँ, स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं !—वही तो !—(प्रकट) अच्छा। छोड़ दिया अबकी, पाभूराव, याद रहे, अबकी यमुनाकी कृपासे तुम्हारे प्राण बच गये। (धक्का देकर) क्यो, याद रहेगा ?

पाभू०—रहेगा।

पृथ्वी०—फिर अगर मैंने सुना कि तुमने यमुनाकी देहमें हाथ लगाया तो बस समझ लेना, तुम्हारी जान नहीं बचेगी। यमुना पृथ्वीराजकी बहन है; याद रहेगा ?

पाभू०—अच्छी तरह याद रहेगा।

पृथ्वी०—चलो यमुना, घरके भीतर । इस मतवालोंके अड्डेसे चलो । (पृथ्वी और यमुनाका प्रस्थान)

पाभू०—(दाँत पीसकर) पृथ्वो ! इसका बदला लूँगा !—पूरा बदला लूँगा । न लूँ तो मेरा नाम पाभूराव नहीं ।

(प्रस्थान)

छठा दृश्य ।

स्थान—बगिया ।

समय—सायंकाल ।

[अकेली तारा]

ठुमरी ।

ये हियेकी बिथाको मिटाय सके, बिन वाही सलौने साँवरिया ;
दियो आपने हाथसो वाको हियो, कियो मोहिं तो बालम बावरिया ।
रह्यो घेरिकै घोर अँधेरो हियो, तिहि दूर करै को बिना पियके ;
अपन हियसों हिय मेरो सखी, वह घेरि रह्यो भरि भाँवरिया ।

तारा—क्यों व्याकुल हो रहा आज मेरा हृदय !
फड़के बारबार आँख यह दाहनी !
धड़के छाती !

(फिर टहल-टहलकर गाती है)

अब माधुरी नाहि रही मधुरे अधरान मिट्यो रसरंग सबै ;
परी पाँयन लोटै अनादरसों, वह शारद चन्दकी चाँदनियाँ ।
छिपे चन्द्रमा तारा सबै घनमें, अब दुर्दिनकी है बुरी ये घड़ी ;
हँसै जैसे अकास प्रकासके पुंजको, व्याकुलकै कुल कामिनियाँ ।

सच है !—सोचा नाथने—
इतनी हूँ मै नीच ! ख्याल उनको हुआ
ऐसा ही ?—हा !—

[दासीका प्रवेश]

दासी— रानी—
तारा— मैं रानी नहीं:—
मैं केवल तारा हूँ । बस, तारा कहो ।
दासी—यह क्यों राजकुमारी ?
तारा— "क्यों" का कुछ नहीं
उत्तर देना चाहूँ । मैं रानी नहीं,
राजकुमारी नहीं ।—मुझे तारा कहो !
मैं चाहूँ सम्मान नही इससे अधिक ।
दासी—हम साधारण स्त्रियाँ ! न समझे नामकी
इतनी महिमा । जो अबतक कहती रही,
वही कहूँगी ! राजकुमारी ! एक स्त्री
खड़ी द्वार पर—मिलना चाहे आपसे !
तारा—कैसी है वह स्त्री ?
दासी— कोई दुखिया बड़ी ।
तारा—दुखिया है ? ले आओ ।

(दासीका प्रस्थान)

प्रियतमने मुझे
दोष लगाया बहुत बड़ा—अन्यायसे ।
प्राणेश्वर !—मै राज्य चाहती हूँ ! मुझे

अबतक जाना नहीं—न पहचाना हृदय
प्राणनाथ !—हे ईश ! मृत्यु—बस मृत्यु दो।

(फिर वही गीत गाती है)

[तमसा और दासीका प्रवेश]

दासी—यह आई है ।

तारा— आप कौन हैं ?

तमसा— सुन्दरी,
मुझे नहीं पहचान सकोगी ।—और कुछ
नहीं प्रयोजन भी इसका है ।

तारा— चाहती
क्या हो ?

तमसा— बस, कल्याण तुम्हारा चाहती !—

तारा—तुम—मेरा कल्याण ?

तमसा— तुम्हारा—सुन्दरी ।
—तारा ! पृथ्वीराज कहाँ है ?

तारा— वह गये
बहनोईके यहाँ—सिरोही-राज्यमे ।

तमसा—साथ गई तुम नहीं ?

तारा— नही, मैं तो नहीं
गई ।

तमसा— अभी तुम जाओ ।

तारा— यह क्यों ?

तमसा— सब नहीं
समझ सकोगी । केवल इतना जान लो—

यमुनाका पति पाभू पृथ्वीराजका
मित्र नहीं है। नीच-प्रकृति है। दे सके
विष भोजनमे; मार सके आकर छुरी
पीछेसे।

तारा— तुम उसे जानती हो ?

तमसा— उसे
खूब जानती हूँ! तुमने अच्छा नहीं
किया, गई जो साथ नहीं। जाओ अभी।

(प्रस्थान)

तारा—समझी समझी।—आज इसीसे दम-ब-दम
धड़क रही है छाती; आँखोंमे भरे
आते आँसू। क्यों छोड़ा प्राणेशको।
जहाँ, जिस जगह, जाते जाती साथ थी;
अबकी ही क्यो नहीं गई ? यह क्या, कहे
जैसे कोई मेरे कानोंमे यही—
ठहर ठहरकर, बार बार—"उनसे नहीं
मिलना होगा!—अब दर्शन होंगे नहीं!"
हे जगदीश्वर! मत बनना ऐसे निठुर।
ताराको लौटा दो उसकी आँखका
तारा प्यारा।—नाथ, तुम्हारे पास मैं
आती हूँ, मैं आती हूँ। रक्षा करो—
मात भवानी!—प्राणेश्वरकी, वहाँ तक
जबतक पहुँचूँ न मैं।—क्रोध, अभिमान या
खेद लाञ्छनाका—अपने अपमानका—

रहा नहीं । प्राणेश पड़े आपत्तिमे,
तब मैं कैसे मूढ़भावसे रूठकर
बैठ रहूँगी यहाँ ?—जीवनाधार प्रिय,
क्षमा करो ! मैं आती हूँ, देरी नहीं । (प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—पाभूरावका सजा हुआ अन्तःपुर ।

समय—दोपहर ।

[अकेले पृथ्वीराज टहलते हुए]

पृथ्वी०—व्याकुलसा हो रहा हृदय, चित्तौरको
फिर जानेके लिए । खींचती हैं मुझे
घरको, वे अभिमान-भरी, आँसू-भरी
निर्मल नीली दोनों आँखें । अब मुझे
समझ पड़ा भ्रम—किया बड़ा अविचार ही !
क्षमा करो प्रियतमे ! सदासे मैं—प्रिये—
ऐसा ही उद्दण्ड उग्र हूँ; क्या करूँ ।

[पाभूरावका प्रवेश]

पाभू०—पृथ्वी ! तो तुम जाओगे क्या आज ही ?

पृथ्वी०—हाँ, जाऊँगा आज, अभी ।

पाभू०— मत सोचना,
आये हो तुम घरमे नातेदारके;
इस घरको तुम अपना ही घर जानना,
पृथ्वी । दो दिन और रहो ।

पृथ्वी०— भाई नहीं;

जाना होगा आज अभी चित्तौरको ।

पाभू०—(स्वगत) जाना होगा ऐसा, लौटोगे नहीं ।

(प्रकट) समझ गया मै, महलोंमे चित्तौरके

तकते होंगे राह, चाहसे चटपटे

दो उत्कण्ठित नयन ।

पृथ्वी०— सत्य तुमने कहा

यह तो पाभूराव ।

पाभू०—(स्वगत) रहे—तकते रहे;

इस जीवनमे कभी देख सकते नही

तुमको, पृथ्वीराज ।

[यमुनाका प्रवेश]

यमुना— रहोगे अब नहीं—

घरमे जाओगे दादा ?

पृथ्वी— हाँ, प्यारी बहन !

जाता हूँ मैं अभी ।

यमुना— ठहर जाओ जरा,

मुँह तो मीठा कर लो; अपने हाथसे

मीठा कुछ तैयार किया है सो अभी

लाती हूँ मैं भाई । (प्रस्थान)

पाभू०— मैं भी आपके

लिए सिरोहीके बढ़िया लड्डू अभी

बनवाकर हलवाईसे लाया यहाँ ।

चखकर देखो तो कैसे लड्डू बने ।

पृथ्वी०—लाओ, दे दो, लेता जाऊँ।

पाभू०— यह नहीं

होगा; खा लो यहीं सामने। इस तरह,

बिना खिलाये, जी मानेगा ही नही।

पृथ्वी०—रहने ही दो—खा लूँगा घरमे।

पाभू०— नहीं

खा लो पृथ्वी, मै छोड़ूँगा यों नहीं।

पृथ्वी०—तो जल्दी दो।

पाभू०— यह लो। (देना और पृथ्वीका खाना)

कैसे है, कहो ?

पृथ्वी०—अच्छे हैं ! कुछ कडवे हैं।

पाभू०—(स्वगत) इतने दिनो

बाद मनोरथ आज पूर्ण मेरा हुआ।

पृथ्वी०—तो आओगे तुम अवश्य अभिषेकमे ?

पाभू०—निश्चय आऊँगा।

पृथ्वी०— यह क्या ! क्या बात है !—

चक्कर-सा आ रहा मुझे !

पाभू०—(स्वगत) होने लगा

असर ज़हरका।

[मिठाई लिये यमुनाका प्रवेश]

पृथ्वी०— यमुना, चक्कर आ रहा !

पानी लाओ।

यमुना— क्या चक्कर-सा आ रहा !

क्या कारण है ? (प्रस्थान)

पृथ्वी०—(अस्थिरभावसे)

पाभू ! सच-सच कहो—दगा तो की नहीं ?

लड्डूमे विष मिला हुआ था ?

[जल लेकर यमुनाका प्रवेश]

यमुना— खूब ही

ठडा पानी लाई हूँ; यह लो—पियो।

पृथ्वी०—(जलपीकर)

पाभू, सच-सच कहो, दगा तो की नही ?

पाभू०—झूठ क्यों कहूँ, काम दगाका अब नहीं

रहा। सत्य है पृथ्वी ! जो लड्डू अभी

खाये तुमने, उनमे विष था।

पृथ्वी०— विष ? दिया

किसने विष ?

पाभू०— यह सब मेरा ही काम है।

पृथ्वी०—पाभू, तो बस एक बार इस जन्ममे

तुमने यह सच बात कही है ! मैं तुम्हे

नीच क्रूर कापुरुष जानता था; मगर

यह सोचा था नहीं कि इतने नीच हो !

तुमने क्यो विष दिया मुझे, पाभू, भला ?

पाभ०—पृथ्वी ! तुमने कई बार बल-दभसे

मेरा जो अपमान किया था, यह उसी

का बदला है। नित्य राहमे, घाटमे,

घर-बाहर, सब जगह तुम्हारा ही सुयश

सुन-सुनकर पक गये कान। मैं डाहसे

कुढ़ता था। यह उसका ही बदला लिया

मैने पृथ्वीराज !

पृथ्वी०— बहुत अच्छा लिया
बदला। पाभूराव !—हाय !—लाचार हूँ !
तुम यमुनाके स्वामी हो ! अब क्या करूँ !
यमुना—वैद्य बुलाऊँ ?
पाभू०— त्रिभुवनमें ऐसा नहीं
कोई भी है वैद्य ! बड़ा ही है विकट
यह विष। इसकी दवा कहीं है ही नहीं।
पृथ्वी०—वैद्य बुलाना मत।—यमुना ! यमुना !—मुझे
छोड़ न जाना अन्तसमयमें। अब नहीं
कुछ विलम्ब है मेरे मरनेमें; बहन—
अन्धकारमय जगत् जान पड़ता सभी।
पाभू०—सच है—यमुना, बहुत देर है अब नहीं !
प्रिये ! बहुत तुमको पृथ्वीका जोर था !
—अब !
यमुना—(घुटने टेककर)
जगदीश्वर ! करुणामय ! रक्षा करो;
समझ न पड़ता, मेरा स्वामी कौन है ?—
नर है, अथवा नरककुण्डका कीट है ?
क्या मनुष्य भी ऐसा होता है ? अहो,
ऐसा कायर, दुष्ट, नीच नर हो सके ?
प्राण दिये जिस अभ्यागतने एक दिन;
जो अभ्यागत सबको अपने ही सदृश
सरल, उदार समझता था—इतना बड़ा
उच्च उदार महाशय था, विश्रब्ध था,
उसको ऐसे अनायास विष दे सके

भोजनमे ?—हा !—ईश्वर ! ऐसा जीव भी
है मनुष्य क्या ? जान पड़े, कुछ और है।
जैसे कोई कीड़ा, कीचड़से सना,
पड़ा हुआ है दूर; देख पड़ता मुझे।

पृथ्वी०—यमुना—यमुना !

पाभू०— यमुना, भाईकी सुनो।
'प्यारे भाई' कहकर बोलो तो ज़रा। (प्रस्थान)

पृथ्वी०—यमुना, यमुना ! प्रिय मेरी छोटी बहन—

यमुना—(पृथ्वीका सिर गोदमें लेकर)
क्षमा करो मेरे भाई। मेरे यहाँ
आये थे, मेरे कहनेसे, हो अतिथि।
मेरे पतिके ही हाथोंसे अन्तको
दशा हुई यह ! तुमने तो आकर यहाँ
मुझे बचाया; बचा सकी मैं ही नही
तुमको—भैया— (रोना)

पृथ्वी०— रोओ मत प्यारी बहन—
करता हूँ अनुरोध—अगर तारा मिले—
उससे कहना—मैंने—मरनेके समय—
क्षमा-प्रार्थना—उससे की थी।—आह—अब—
यमुना—कुछ सूझता नहीं,—सारा जगत—
अन्धकारमय हुआ—भूलना मत—बहन—
तारा—से—कह देना—जाता हूँ;—हरे ! (मृत्यु)

यमुना—(ऊँचे स्वरसे) दादा ! दादा ! दादा ! दीपक बुझ गया—
सोनेके पिंजड़ेसे पक्षी उड़ गया।

इस खाली पिजड़ेको अपनी गोदमे
रखकर अब क्या करूँ—(पृथ्वीका सिर
पृथ्वी पर रखकर खड़े होकर) वीरवर, तो चलो—
चलो स्वर्गको । पीछेसे हम लोग भी
आते है ।—तुम थे उदार, स्नेही, बड़े
विक्रमशाली । कीर्ति तुम्हारी हर जगह
चारण कवि गावेंगे राजस्थानमे ।
जाओ, जाओ स्वर्गलोकको ।—कौन वह
आता ! यह तो तारा है उन्मादिनो ।

[ताराका प्रवेश]

तारा—कहाँ ! कहाँ है प्राणनाथ ! यमुना ! कहाँ
है प्रियतम !—

(यमुना चुप रहती है)

इस जगह पड़े है भूमिमे
क्यो ऐसे प्राणेश ? हृदयसर्वस्वका
चेहरा क्यो पड़ गया स्याह ?—यमुना !—कहो ।

यमुना—तारा ! तारा ! क्या देखो,—क्या देखने
आई हो ! अब पृथ्वी इस जगमे नही ।

तारा—कहाँ नही हैं पृथ्वी ? यमुना क्या कहो ?

यमुना—हाय कहूँगी क्या ! कहनेको कुछ नहीं ।
—हत्या, हत्या—तारा !—हत्या की गई ।

तारा—हत्या ? हत्या किसने की ? जल्दी कहो ।

यमुना—हाय कहूँ क्या तारा ! मेरे ही अधम
पतिने की है हत्या ।

तारा— कैसे ?

यमुना— विष दिया ।

तारा—विष ? विष ? (स्तंभितभावसे) पृथ्वीराज नहीं हैं तो ?—कहो—

सच है ? क्या यह सच है ? सारी देहका
रक्त पहुँचकर सिरमे चक्कर खा रहा ।
समझ न पड़ता कुछ भी । पृथ्वी हैं नही ?

यमुना—नहीं—नहीं है । हाय अभागिन । हम बहन
दोनो आओ आपसमे लगकर गले
ऊँचे स्वरसे रोवे । भाई खो दिया
मैंने, तुमने गँवा दिया पति । एक ही
दुखसे रोवें आओ ।

तारा— तो वह चल दिये ?—
इतनी रिस थी ! हाँ, ऐसा अभिमान था !
एक बार भी बात नहीं की ? हाँ, जरा
देखा मेरी ओर नहीं ! इतना किया
था मैंने अपराध ?

यमुना— मृत्युके कुछ प्रथम,
भाई, तुमसे तारा, यह है कह गये—
तारासे कह देना, मरनेसे प्रथम,
मैंने जीसे माँगी थी उससे क्षमा ।

तारा—क्षमा !—झूठ है ! यमुना ! यह सब झूठ है ।
वे अभिमानी बड़े ! बड़े ही हैं निठुर !
बिना कहे चल दिये—इसीसे चल दिये ।
नाथ ! प्राणपति !—अबकी धोखा दे गये

किया न आँखों-ओट कभी—अबकी किया,
वैसे ही कपटी—सुयोग पा चल दिए !
—अच्छा देखूँ ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ
जा सकते हो ? मैं भी आती हूँ वहीं
जंगल, सागर, या पहाड़ पर तुम रहो;
तुमसे आकर आज मिलूँगी मैं वहो !
स्वर्ग-मर्त्य-पाताल लोकमे, मैं तुम्हे
ढूँढ निकालूँगी छलिया ! तुम सोचते
होगे—वृथा विलाप करूँगी मैं यहाँ;
पास तुम्हारे नहीं जा सकूँगी । नहीं—
नही छली ! यह तो हो ही सकता नहीं ।
—मैं भी आऊँ ?—जल, दावानल, मृत्युपथ
और प्रलयके भी भीतर होकर वहाँ—
मैं आऊँगी । सुखमे, दुखमे, ऐशमे
और कष्टमे, ज्ञान और अज्ञानमे,
जीवनमे भी और मरणमें भी—प्रभो—
बनी रहूँगी सदा तुम्हारे पास ही ।—
देखूँ, मुझको कौन रोकता है भला ।

(छातीमे कटार मारकर पृथ्वीराजके पैरोंपर गिर पड़ना)

यमुना—यह क्या ! कैसा सर्वनाश ! तारा ! अरे
तारा ! यह क्या किया ? क्या किया ?

तारा— क्या किया !
पतिव्रताका, पत्नीका, स्त्रीजातिका
काम किया । आ मौत—जानती थी नही,
तू इतनी है स्निग्ध मधुर प्यारी—बहन ?

सखी सतीकी तू ही है सखी मुझे
ले चल पतिके पास ।

(यमुनासे)—बिदा—तुमसे बिदा
होती हूँ अब बहन ! सती पतिके निकट
जाती है ।

यमुना— यह तुमने तारा क्या किया—
यह क्या ?

तारा— मेरी आज मिलनकी रात है !
मेरी प्यारी बहन, मिलनकी रात है !

(हँसते-हँसते मृत्यु)

यमुना—अन्धकार ! बस अन्धकार है ! हे हरे !

(गिर पड़ना)